इकाई– 17

नास्तिक दर्शनों का सामान्य परिचय (सर्वदर्शनसंग्रह)

इकाई की रूपरेखा

17.0 उद्देश्य

भारतीय दर्शन में दो विचारधाराएं समानान्तर चली आ रही हैं– नास्तिक दर्शन व आस्तिक दर्शन। नास्तिक दर्शनों का उद्भव व विकास वेद के विरोध में हुआ और आस्तिक दर्शन वैदिक विचारधारा को लेकर प्रवृत्त होते हैं और नास्तिक विचारों का खण्डन करते हैं। नास्तिक दर्शनों का सामान्य परिचय आस्तिक दर्शनों के अध्ययन में सहायक है। साथ ही दोनों दर्शनों के तुलनात्मक अध्ययन के लिए भो इनकी विचारधारा को समझना आवश्यक है। इस इकाई का उद्देश्य निम्न विषयों का अध्ययन करना है जो इन दर्शनों की विचारधारा को समझने में सहायक रहेगा।

- नास्तिक दर्शनों का सामान्य परिचय
- बौद्ध दर्शन के सिद्धान्त
- जैन दर्शन के सिद्धान्त

17.1 प्रस्तावना

भारतीय दर्शन के क्षेत्र में चार्वाक, जैन व बौद्ध इन तीनों दर्शनों को प्रायः नास्तिक दर्शनों के रूप में स्वीकार किया जाता है। छः आस्तिक दर्शनों में इनकी गणना नहीं होती। चार्वाक का साहित्य ऐसा उपलब्ध नहीं, जिससे उसकी परम्परा का पता चल सके, किन्तु जैन व

बौद्ध इन दोनों की अपनी एक परम्परा है– श्रमण परम्परा, जो वैदिक परम्परा से मूलभत् पार्थक्य रखती है। आस्तिकता नास्तिकता का आधार मूलतः वेद प्रामाण्य– अप्रामाण्य था– नास्तिको वेदनिन्दकः – मनुस्मृति 2/11

प्रस्तुत इकाई 11 में आप बौद्ध एवं जैन दर्शन का परिचय प्राप्त करेंगे तथा इकाई 18 में चार्वाक दर्शन का परिचय एवं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

17.2 बौद्ध दर्शन

बौद्ध दर्शन के संस्थापक महात्मा बुद्ध माने जाते हैं। बुद्ध का जन्म ईसा की छठी शताब्दी पूर्व हुआ था। तत्त्वज्ञान अर्थात् बोधि प्राप्त कर लेने के बाद वे बुद्ध की संज्ञा से विभूषित हुए। सत्यज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद बुद्ध ने लोक कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अपने सन्देशों को जनता तक पहुँचाने का संकल्प किया।

बौद्ध दर्शन के अनेक अनुयायी थे। अनुयायियों में मतभद होने के कारण बौद्ध दर्शन की अनेक शाखाएं निर्मित हो गईं। बुद्ध की मृत्यु के उपरान्त उनके शिष्यों ने बुद्ध के उपदेशों का संग्रह त्रिपिटक ग्रन्थों में किया। इनकी रचना पाली भाषा में हुई। ये पिटक हैं– सुत्त पिटक, अभिधम्म पिटक और विनयपिटक। सुत्त पिटक में धर्म सम्बन्धी बातों की चर्चा है। अभिधम्म पिटक में बुद्ध के दार्शनिक विचारों का संकलन है। विनयपिटक में नीति सम्बन्धी बातें संकलित हैं। इनका रचनाकाल तीसरी शताब्दी ई. पू. माना गया है। इसके अतिरिक्त बौद्धदर्शन का प्रामाणिक ग्रन्थ मिलिन्दपन्हो ;मिलिन्दप्रश्नद्ध माना जाता है।

बुद्ध सामान्यतः तत्त्वशास्त्र विषयक चिन्तन के प्रति मौन रहे हैं। बुद्ध के अनुसार संसार दुःखों से परिपूर्ण है। उन्होंने दुःख के सम्बन्ध में जितने भो प्रश्न हैं उनका उत्तर जानने क लिए प्रेरित किया। उन्होंने दर्शन का उद्देश्य दुःखों का अन्त कहा है। इसलिए उन्होंने दुःख की समस्या और दुःख निरोध पर ही विशेष बल दिया है। दुःख से पीडित मानव के लिए आत्मा, जगत्, ईश्वर जैसे प्रश्नों के अनुसन्धान में निमग्न रहना निरर्थक है। अतः तत्त्वशास्त्र के प्रश्नों के प्रति बुद्ध का मौन प्रयोजनात्मक है।

17.2.1 चार आर्य सत्य

बुद्ध के सारे उपदेश चार आर्य सत्यों में सन्निहित है।

यथा– दुःखसमुदयनिरोधमार्गाश्चत्वार आर्यबुद्धस्याभिमतानि तत्त्वानि।

ये चार आर्यसत्य इस प्रकार है– 1. संसार दुःखों से परिपूर्ण है। 2. दुःखों का कारण भो है। 3.दुःखों का अन्त सम्भव है। 4 दुःखों के अन्त का मार्ग है। प्रथम आर्यसत्य को दुःख, द्वितीय को दुःख समुदय, तृतीय को दुःख निरोध एवं चतुर्थ आर्यसत्य को दुःख निरोध का मार्ग कहा गया है। इन चार आर्यसत्यों में बौद्ध दर्शन का सार है। इन्हीं से अनासक्ति, वासनाओं का नाश, दुःखों का अन्त, मानसिक शान्ति, ज्ञान, प्रज्ञा तथा निर्वाण सम्भव हो सकते हैं।

1. दुःखः– संसार दुःखमय है। सब कुछ दुःखमय हैं। जीवन में अनेक प्रकार के दुःख है। रोग, बुढापा, मृत्यु, चिन्ता, असन्तोष, नैराश्य, शोक इत्यादि सांसारिक दुःखों का प्रतिनिधित्व करते हैं। बुद्ध के अनुसार– जन्म में दुःख है, नाश में दुःख है, रोग दुःखमय है, मृत्यु दुःखमय है, अप्रिय से संयोग दुःखमय है, प्रिय से वियोग दुःखमय है। संक्षेप में पंचस्कन्ध : विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार और रूप दुःखमय हैं। बुद्ध ने सांसारिक सुख को दुःख इसलिए भो कहा है कि वे क्षणिक एवं नाशवान हैं। जो वस्तु क्षणिक होती है, उसके नष्ट होने पर उसका अभाव खटकता है जिसके फलस्वरूप दुःख का प्रादुर्भाव होता हैं क्षणिक सुख को सुख कहना मूर्खता है। सभो शास्त्रकार संसार को दुःखात्मक मानते हैं– सर्वस्य संसारस्य दुःखात्मकत्वं सर्वतीर्थंकरसम्मतम् (सर्वदर्शनसंग्रह, बौद्धदर्शन,16)।
2. दुःख समुदय– यह भवचक्र सिद्धान्त प्रतीत्यसमुत्पाद कहा जाता है। इसके अनुसार एक वस्तु के उपस्थित रहने पर किसी अन्य वस्तु की उत्पत्ति अर्थात् एक के आगमन से दूसरे की उत्पत्ति होती है। यह सिद्धान्त कार्यकारण सिद्धान्त पर आधारित है, यह

प्रामाणित करता है कि प्रत्येक कार्य अपने कारण पर आश्रित है। जरा मरण का कारण जाति अर्थात् जन्म ग्रहण करना है। यदि मानव शरीर धारण नहीं करता तो उसे सांसारिक दुःख का सामना नहीं करना पडता। जाति का कारण भव है। भव का कारण उपादान है। उपादान का कारण तृष्णा, तृष्णा का कारण वेदना है। वेदना का कारण स्पर्श है। स्पर्श का कारण षडायतन है। षडायतन का कारण नामरूप हैं। नामरूप का कारण विज्ञान है। विज्ञान का कारण संस्कार है। संस्कार का अर्थ है–व्यवस्थित करना। संस्कार का कारण अविद्या है अतः अविद्या ही समस्त दुःखों का मूल कारण है। यह सिद्धान्त द्वादश निदान कहा जाता है। यही संसारचक्र कहा जाता है। यथा– समुदयो दुःखकारणम्।

3. दुःख निरोध– वह अवस्था जिसमें दुःख का अन्त होता है दुःख निरोध कहलाती है। यथा– तदुभयनिरोधः। यही निर्वाण है। मोक्ष ही निर्वाण है। निर्वाण इस जीवन में भो सम्भव है। इस जीवन में भो दःखों का निरोध हो सकता है। जब मनुष्य राग, द्वेष, मोह, आसक्ति, अहंकार इत्यादि पर विजय पा लेता है, तब वह मुक्त हो जाता है। मुक्त ही अर्हत् कहा जाता है। निर्वाण के बाद भो शरीर बना रहता है क्योंकि शरीर पूर्व जन्म के कर्मों का फल है। जब तक कम समाप्त नहीं होते शरीर रहता है। निर्वाण जीवन मुक्ति है। परिनिर्वाण मृत्यु के बाद निर्वाण की प्राप्ति है। निर्वाण निष्क्रिय अवस्था नहीं है। निर्वाण को प्राप्त कर व्यक्ति लोककल्याण की भावना से काम करता है। निर्वाण का अर्थ बुझा हुआ मानने वाले इसे पूर्ण विनाश कहते हैं, हीनयान सम्प्रदाय का यही मत ह। कुछ ने निर्वाण का अर्थ शीतलता माना है। निर्वाण काम क्रोध आदि दुःखरूपी अग्नि को ठण्डा रखता है। वस्तुतः निर्वाण अनिर्वचनीय है।

4. दुःख निरोध मार्ग– बुद्ध ने कहा है कि दुःखों का निरोध सम्भव है। बुद्ध ने चतुर्थ आर्य सत्य में निरोध की अवस्था को अपनाने के लिए एक मार्ग की चर्चा की है। इस मार्ग को दुःख निरोध मार्ग कहा जाता है। यह अष्टांगिकमार्ग भो कहलाता है।

1. सम्यक् दृष्टि– बुद्ध ने दुःख का मूल अविद्या को माना है। अविद्या से मिथ्या दृष्टि उत्पन्न होती है। वस्तुओं के यथार्थ स्वरूप को जानना सम्यक् दृष्टि है। इसका अर्थ हैं बुद्ध के चार आर्यसत्यों का यथार्थ ज्ञान। ये आर्य सत्य निर्वाण की ओर ले जाने वाले हैं।

2. सम्यक् संकल्प– बुद्ध के चार आर्य सत्यों का जीवन में पालन करने का निश्चय ही सम्यक् संकल्प है।

3. सम्यक् वाक्– सम्यक् संकल्प की अभिव्यक्ति सम्यक् वाक् है। कोई व्यक्ति सम्यक् वाक् का पालन तभो कर सकता है जब वह निरन्तर सत्य व प्रिय बोलता हो। सिर्फ सत्य ही नहीं क्योंकि जिस वचन से दूसरों को कष्ट हो उसका परित्याग अभोष्ट है।

4. सम्यक् कर्मान्त– सम्यक् कर्मान्त का अर्थ है– बुरे कर्मों का परित्याग। हिंसा, स्तेय व इन्द्रिय भोग तीन बुरे कम हैं। इनका त्याग सम्यक् कर्मान्त है।

5. सम्यक आजीविका– सम्यक् आजीविका का अर्थ है ईमानदारी से जीविकोपार्जन करना। निर्वाण की प्राप्ति के लिए कटुवचन एवं बुरे कर्मों के परित्याग के साथ साथ जीवन निर्वाह के अशुभ मार्ग का त्याग भो परमावश्यक है।

6. सम्यक् व्यायाम– हमारे मन में घर कर चुके पुराने बुरे विचार तथा निरन्तर प्रवाहमान नवीन बुरे विचारों में पुराने विचारों को मन से निकालना व नये बुरे विचारों को मन में आने से रोकना, अच्छे भावों को मन में भरना, और अच्छे भाव बनाये रखने के लिए निरन्तर क्रियाशील रहना सम्यक् व्यायाम है।

7. सम्यक् स्मृति– सम्यक् स्मृति द्वारा इस बात पर जोर दिया जाता है कि हम वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप के प्रति जागरुक रहें। निर्वाण की कामना रखने वाले को शरीर

को शरीर, मन को मन, संवेदना को संवेदना समझना आवश्यक है। इस प्रकार नाशवान् वस्तुओं की स्मृति ही सम्यक् स्मृति है।

8. सम्यक् समाधि– निर्वाण की चाह रखने वाला अपनी चित्तवृत्तियों का निरोध कर समाधि की अवस्था अपनाने योग्य हो जाता है। समाधि की प्रथम अवस्था में साधक को चार आर्यसत्यों का स्मरण, मनन, चिन्तन करना पडता है। सन्देह दूर करना पडता हैं उसके बाद आर्यसत्यों में श्रद्धा उत्पन्न होती है। दूसरी अवस्था में तर्क वितर्क की आवश्यकता नहीं रहती। आनन्द व शान्ति की अनुभ्ति होती है। तीसरी अवस्था में आनन्द व शान्ति की चेतना के प्रति उदासीनता का भाव आता है। चौथी अवस्था में यह भाव भो नष्ट हो जाता है। इस अवस्था को प्राप्त हो जाने पर वह अर्हत् संज्ञा प्राप्त करता है।

बुद्ध का यह मार्ग प्रज्ञा, शील, समाधि नामक अंगों में विभाजित किया गया है। सम्यक् दृष्टि और सम्यक् संकल्प प्रज्ञा है। सम्यक् वाक्, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका व सम्यक् व्यायाम शील है। सम्यक् स्मृति व सम्यक् समाधि समाधि के अन्तर्गत आते हैं।

17.2.2 क्षणिकवाद

प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धान्त अनित्यवाद में प्रतिफलित होता है। विश्व की प्रत्येक वस्तु चलायमान है। संसार में कोई भो ऐसी वस्तु नहीं है जो परिवर्तनशील न हो। अतः विश्व की प्रत्येक वस्तु अनित्य है, चाहे वह जड़ हो अथवा चेतन। अनित्यवाद शाश्वतवाद और उच्छेदवाद का मध्यमार्ग है। मध्यममार्ग का सिद्धान्त है कि जीवन परिवर्तनशील है। जीवन को परिवर्तनशील कहकर बुद्ध ने सत् एवं असत् का समन्वय किया है। क्षणिकवाद के अनुसार प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व क्षणमात्र के लिए होता है। विश्व की प्रत्येक वस्तु अनित्य ही नहीं क्षणभगुर भो है। किसी वस्तु की सत्ता तभो तक मान्य है जब तक उसमें कार्य करने की शक्ति विद्यमान है, यही अर्थक्रियाकारित्व है। क्षणिकवाद के समर्थन में वे कहते हैं–

यत्सत्तत्क्षणिकं यथा जलधरः सन्तश्च भावा अमी।

सत्ता शक्तिरिहार्थमकमणि मितेः सिद्धेषु सिद्धा न सा।

नाप्येकैव विधान्यथा परकृतेनापि क्रियादिभंवेद्

द्वेधापि क्षणभंगसंगतिरतः साध्ये च विश्राम्यति।।

अर्थात् जिसकी सत्ता है वह क्षणिक है जैसे जलधर ;बादलद्ध और ये सत्ता सम्पन्न भाव (वस्तुएँ घट पट आदि) हैं। अर्थ कम की शक्ति ही सत्ता में प्रमाण है। यह सत्ता सिद्ध (स्थिर) पदार्थों में स्थिर नहीं है, एक ही प्रकार नहीं है नहीं तो दूसरे के द्वारा दूसरे की क्रिया उत्पन्न हो सकती ह। इसप्रकार दोनों रीतियों (क्रम और अक्रम) से क्षण पदार्थों के भग (विनाश) की संगति होती है और अन्त में हमारे साध्य शक्तिवाद की सिद्धि होती है।

बौद्धों के अनुसार संसार में जितनी भो वस्तुएं हैं, परिवर्तनशील हैं। उनकी परिवृत्ति क्षण क्षण में होती जा रही है। एक ही चीज को हम दो बार नहीं देख सकते, एक ही नदी में दो बार स्नान नहीं कर सकते और न एक ही मनुष्य को दो बार प्रणाम नहीं कर सकते हैं। किसी की भो सत्ता क्षणमात्र के लिए है। कार्योत्पत्ति ही वस्तुओं का उद्देश्य है। एक क्षण में रहना, दूसरे क्षण में अर्थक्रिया और विनाश यही है बौद्धों का सत्ताविषयक सिद्धान्त।

17.2.3 अनात्मवाद

बुद्ध के अनुसार संसार की सब वस्तुएं क्षणिक हैं। यदि आत्मा का अर्थ स्थायी तत्त्व में विश्वास करना है तो बुद्ध का मत अनात्मवाद कहा जा सकता है, क्योंकि उनके मतानुसार स्थायी आत्मा में विश्वास करना भामक है। बुद्ध ने शाश्वत आत्मा का निषेध किया है, उनके अनुसार– विश्व में न कोई आत्मा है और न आत्मा की तरह कोई अन्य वस्तु। पाँच ज्ञानेन्द्रियों के आधार स्वरूप मन और मन की वेदनायें, वे सब आत्मा या आत्मा के समान किसी चीज से बिल्कुल शून्य हैं। बुद्ध के मतानुसार आत्मा अनित्य है। यह अस्थायी शरीर व मन का संकलन मात्र है। दूसरे शब्दों में आत्मा पाँच स्कन्धों की समष्टि का नाम है। ये

पाँच स्कन्ध हैं– रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान। स्कन्धों के परिवर्तनशील होने से आत्मा भो परिवर्तनशील है।

बुद्ध के अनुसार पुनर्जन्म का अर्थ एक आत्मा का दूसरे में प्रवेश करना नहीं है। जब एक विज्ञान प्रवाह का अन्तिम विज्ञान समाप्त हो जाता है तब अन्तिम विज्ञान की मृत्यु हो जाती है और एक नये शरीर में एक नये विज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। इसी को बुद्ध ने पुनर्जन्म कहा है। वर्तमान जीवन की अन्तिम अवस्था में भविष्य जीवन की प्रथम अवस्था का विकास सम्भव है। अतः नित्य आत्मा के बिना भो बुद्ध पुनर्जन्म की व्याख्या करने में सफल होते हैं।

17.2.4 अनीश्वरवाद

बुद्ध ने ईश्वर की सत्ता का निषेध किया है। बुद्ध के अनुसार यह संसार प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम स संचालित होता है। सारा विश्व उत्पत्ति और विनाश के नियम से शासित है। विश्व परिवर्तनशील एवं अनित्य है। इस नश्वर एवं परिवर्तनशील जगत् का स्रष्टा ईश्वर को ठहराना, जो नित्य एवं अपरिवर्तनशील है, असंगत है। यदि ईश्वर विश्व का निर्माता है तो विश्व में भो परिवर्तन व विनाश का अभाव होना चाहिए। जबकि विश्व सुख, दुःख एवं परिवर्तन युक्त है। ईश्वर विश्व का निर्माण किसी प्रयोजन की पूर्ति के लिए करता है, तब ईश्वर की अपूर्णता परिलक्षित होती है, क्योंकि प्रयोजन किसी न किसी कमी को ही अभिव्यक्त करता है। बुद्ध के मतानुसार यह संसार प्रतीत्यसमुत्पाद के नियम से ही संचालित होता है। विश्व की समस्त वस्तुएं कार्य कारण की एक श्रृंखला हैं। कोई भो ऐसी वस्तु नहीं है जो अकारण हो। कारण नियम के स्रष्टा के रूप में ईश्वर को मानना दोषपूर्ण है। इससे ईश्वर की अपूर्णता सिद्ध होगी।

17.2.5 निर्विकल्पक प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण

सर्वदर्शनसग्रह में माधवाचार्य ने बौद्धमत के अनुसार कहा है कि निर्विकल्पक प्रत्यक्ष कल्पना से रहित तथा भान्ति रहित होने से प्रमाण है। सविकल्पक प्रत्यक्ष में वस्तुओं की प्रतीति होती है जो एकमति से नहीं होने के कारण भम है और शब्द, लिंग, इन्द्रियादि से उत्पन्न होने के कारण प्रमाण भो नहीं है–

कल्पनापोढमभान्तं प्रत्यक्षं निर्विकल्पकम्।
विकल्पो वस्तुनिर्भासादसंवादादुपप्लवः।।24।।

17.2.6 बौद्ध दर्शन के सम्प्रदाय

बुद्ध दार्शनिक विषयों पर प्रायः मौन रहते थे। उनके विपरीत बौद्ध विद्वानों ने दर्शन के क्षेत्र में प्रवेश किया और उनकी कई दार्शनिक शाखाएं हुईं। ये हैं– माध्यमिक (शून्यवाद),योगाचार (विज्ञानवाद),सौत्रान्तिक (बाह्यानुमेयवाद), वैभाषिक (बाह्यप्रत्यक्षवाद)।

1. माध्यमिक – शून्यवाद

इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक नागार्जुन माने जाते हैं। उनकी माध्यमिक कारिका के अनुसार शून्य का अर्थ है वर्णनातीत। नागार्जुन के अनुसार परमतत्त्व अवर्णनीय है। माध्यमिक पारमार्थिक सत्ता को मानते हैं, लेकिन वे उसे अवर्णनीय बतलाते हैं। वे प्रत्यक्ष जगत् से परे पारमार्थिक सत्ता को स्वीकार करते हैं लेकिन उसे वर्णनातीत कहते हैं। उन्होंने प्रतीत्यसमुत्पाद को भो शून्य कहा है। शून्यवाद सापेक्षवाद है, उसके अनुसार वस्तुओं का स्वभाव अन्य वस्तुओं पर निभर होता है। यह मध्यम मार्ग भो कहलाता है। उनके अनुसार दृश्य जगत् के सभो अनुभव सापेक्ष हैं, परन्तु निर्वाण में जो अनुभ्ति होती है वह पारमार्थिक है, नित्य है तथा निरपेक्ष है। वे दो प्रकार के सत्य संवृत्ति व पारमार्थिक को मानते हैं।

2. योगाचार – विज्ञानवाद

योगाचार के प्रवर्तक दिङ्नाग, असंग और वसुबन्ध है। विज्ञानवाद के अनुसार विज्ञान सत्य है। यदि विज्ञान अर्थात् मन की सत्ता को नहीं माना जाय तब सभो विचार असिद्ध हो जाते हैं। अतः विचार की सम्भावना के लिए चित् को मानना अपेक्षित है। इनके अनुसार चित्त ही एकमात्र सत्ता है। विज्ञानवादी मन के बाहर के शरीर आदि सभो पदार्थों को मानसिक विकल्प मानते हैं। विज्ञान के दो भद हैं– प्रवृत्ति विज्ञान व आलय विज्ञान। प्रवृत्ति विज्ञान

चक्षु, श्रोत्र, धारण, रसना, काय, मन तथा विशिष्टि मनोविज्ञान रूप में सात प्रकार का है। इन सबका संयोजन करने वाला चित्त है। प्रवृत्ति विज्ञान आलय विज्ञान पर अवलम्बित है। सभो ज्ञान बीज रूप में यहाँ एकत्रित रहते हैं। यह अन्य दर्शनों की आत्मा के समान है। सामान्यतः इसका अर्थ है परिवर्तनशील चेतना का प्रवाह। विज्ञानवाद के अनुसार विज्ञान से अलग किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। ये योग के आचरण के आधार पर बाह्य जगत् की काल्पनिकता को प्रमाणित करने का प्रयास करते थे।

3. सौत्रान्तिक– बाह्यार्थानुमेयवाद

सौत्रान्तिक और वैभाषिक मत हीनयान सम्प्रदाय के दो रूप हैं। सूत्रपिटक को आधार मानते हुए सौत्रान्तिक चित्त तथा बाह्य वस्तुओं, दोनों के अस्तित्व को मानते हैं। वे बाह्य जगत् को चित्त के समान सत्य मानते हैं। उनके अनुसार वस्तु ज्ञान से भिन्न है। ज्ञान आभ्यन्तर अथवा आत्मनिष्ठ है परन्तु वस्तु बाह्य अथवा विषयगत है। उनके अनुसार ज्ञान के चार कारण है– आलम्बन, समनन्तर, अधिपति एवं सहकारी प्रत्यय। बाह्य विषय आलम्बन है। ज्ञान के लिए चेतन मन तथा पूर्ववर्ती मानसिक अवस्था का रहना आवश्यक है जो आकार का ज्ञान दे सके। इन्द्रियों को ज्ञान का अधिपति प्रत्यय कहा गया है। इन्द्रियों के बिना ज्ञान नहीं हो सकता। आकार, आवश्यक दूरी आदि भो ज्ञान के सहायक कारण है। ये ही सहकारी प्रत्यय हैं।

4. वैभाषिक– बाह्यार्थप्रत्यक्षवाद

बौद्ध धर्म के अभिधर्म पर लिखी विभाषा टीका पर आधारित होने से ये सम्प्रदाय वैभाषिक कहलाता है। ये चित्त और जड़ दोनों की सत्ता मानते हैं। ये सभो वस्तुओं के अस्तित्व में विश्वास करते हैं। इसलिये इन्हें सर्वास्तित्ववादी कहा जाता है। ये बाह्य विषयों का ज्ञान प्रत्यक्ष से मानते हैं। मानसिक प्रतिरूपों से ज्ञान मानना भामक है। बाह्य विषय अणुओं का संघात है। अणु में रूप, शब्द, संवाद, आकार नहीं है। ये निर्वाण को भावरूप मानते हैं। निर्वाण दुःख का पूर्ण विनाश व अनन्त है, वह अनिर्वचनीय है।

17.2.7 बौद्ध मत के धार्मिक सम्प्रदाय

1. हीनयान

हीनयान बुद्ध के उपदेशों पर आधारित है। इसके अनुसार सभो वस्तुएं क्षणभगुर हैं। ये आत्मा की सत्ता नहीं मानते। ईश्वर की सत्ता स्वीकार नहीं करते। संसार का नियामक धम्म है जिसके कारण व्यक्ति के कम फल का नाश नहीं होता। इसके अतिरिक्त संघ में निष्ठा आवश्यक है। जीवन का चरम लक्ष्य अर्हत् होना या निर्वाण प्राप्त करना है। ये स्वावलम्बन पर जोर देते हैं। वे व्यक्ति के निजी मोक्ष की चिन्ता करते हैं। ये संन्यास को मानते हैं। वे बुद्ध को महात्मा के रूप में मानते हैं।

2. महायान

हीनयान धर्म की संकीर्णता एवं अव्यावहारिकता में ही महायान का बीज अन्तभ्त् है। महायान का अर्थ है बडी गाडी अथवा प्रशस्त मार्ग। इसके द्वारा निर्देशित मार्ग पर असंख्य व्यक्ति चलकर चरम लक्ष्य को अपना सकते हैं। इन्होंने बोधिसत्व की कल्पना की। जो करुणा से पूर्ण हैं। वे संसार में रहते हैं लेकिन संसार की आसक्ति से प्रभावित नहीं होते। वे बुद्ध को ईश्वर के रूप में मानते हैं। उन्होंने बुद्ध को पारमार्थिक सत्य का एक अवतार माना है। ये आत्मा का अस्तित्व मानते हैं। संन्यास व पलायन की पद्धति के ये कटु आलोचक हैं। इस सम्प्रदाय में कम विचार में परिवर्तन लाने का प्रयास किया गया है। कमसिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति कम के अनुसार फल पाता है। बोधिसत्व अपने कर्मों के फल से दूसरों को लाभान्वित कर सकते हैं, तथा दूसरे व्यक्तियों के पापमय कर्मों का स्वयं भोग कर सकते हैं।

17.3 जैन दर्शन

जिस समय भारतवर्ष में बौद्धदर्शन का विकास हो रहा था उसी समय यहाँ जैन दर्शन भो विकसित हो रहा था। जैन मत के संस्थापक इसके चौबीस तीर्थंकर हैं। इन्होंने अपने प्रयत्नों क बल पर बन्ध का त्यागकर मोक्ष को स्वीकार किया है। ये 'जिन' कहलाते हैं क्योंकि इन्होंने राग द्वेष पर विजय प्राप्त कर ली हैं। जैन एवं बौद्ध दोनों ही वेद विरोधी हैं। दोनों ईश्वर को जगत् का कर्ता नहीं मानते। दोनों ने अहिंसा पर बल दिया है। जैन आत्मा में विश्वास करते हैं, बोद्ध आत्मा को नहीं मानते। बौद्ध जड़ का निषेध करते हैं जबकि जैन जड़ की सत्ता को सत्य मानते हैं। इनका दार्शनिक ग्रन्थ 'तत्त्वार्थाधिगमसूत्र' सूत्र शैली में जैन दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

जैनदर्शन के अनुसार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र ये तीनों मिलकर मोक्ष के साधन हैं। इन्हें त्रिरत्न या रत्नत्रय भो कहा जाता है। यथार्थरूप से तत्त्वों (पदार्थों) का निश्चय करने की रुचि सम्यक् दर्शन है, नय और प्रमाण से होने वाला जीव आदि तत्त्वों का यथार्थ बोध सम्यग्ज्ञान है और जीव की हिंसा आदि दोषों का त्याग और अहिंसा आदि अणुव्रतों और महाव्रतों का आचरण सम्यक् चारित्र है। इस प्रकार जैन दर्शन को समझने के लिए सर्वप्रथम जीवादि तत्त्वों का ज्ञान आवश्यक है, अतः इस इकाई में जैन दर्शन सम्मत सात तत्त्वों अथवा नौ तत्त्वों का निरूपण किया जा रहा है।

17.3.1 सात तत्त्व

उमास्वामी विरचित तत्त्वार्थसूत्र में जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व कहे गये हैं– 'जीवाजीवास्रवबन्धसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्'। 1/ 4

बहुत से ग्रन्थों में पुण्य और पाप को मिलाकर नौ तत्त्व कहे गये हैं किन्तु बन्ध तत्त्व में पुण्य और पाप का अन्तर्भाव मान लेने से सात तत्त्व ही प्रमुख हैं।

तत्त्व का अर्थ है मोक्ष प्राप्ति में उपयोगी होना। जीव मोक्ष का अधिकारी है, अजीव अधिकारी नहीं है, बन्ध मोक्ष का विरोधी है और आस्रव उस बन्ध का कारण है, संवर मोक्ष का कारण है और निर्जरा से मोक्ष का क्रम सूचित होता है अतः ये सात तत्त्व कहलाते हैं।

1. जीव तत्त्व– जीव का लक्षण उपयोग है। जीव को आत्मा भो कहते हैं, यह अनादि एवं स्वतन्त्र द्रव्य है। जीव उपयोगमय, अमूर्त, कर्ता, स्वदेहपरिणाम, भोक्ता, ऊर्ध्वगति स्वभाव वाला कहा गया है। इन्द्रिय– बल– आयु–श्वासोच्छवास इन चार प्राणों से जीने वाला व्यवहार से जीव कहलाता है तथा निश्चय से चेतना स्वभाव वाला जीव है। 'जीवति प्राणिति चतुर्भिरिन्द्रियबलायुःश्वासोच्छवासाख्यैः प्राणैः व्यवहारेण निश्चयेन तु स्वचेतनात्मकस्वभावेन स जीवः'। जीव के प्रमुख दो भद हैं 1. संसारी 2. मुक्त।

तस्य द्वौ भदौ संसारस्थो मुक्तश्चेति। संसारी जीव त्रस और स्थावर दो प्रकार के हैं। पृथ्वीकाय, जलकाय, तेजस्काय, वायुकाय एवं वनस्पतिकाय मात्र एक स्पर्शन इन्द्रिय वाले होने से स्थावर जीव हैं। गतिहीन जीवों को स्थावर जीव कहा जाता है।

द्वि– इन्द्रिय, त्रि– इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय जीव उद्देश्यपूर्वक हिलने डुलने की शक्ति वाले होने से त्रस जीव कहलाते हैं। त्रस जीव गतिशील हैं।

द्वि– इन्द्रिय अर्थात्स्पर्शन इन्द्रिय तथा रसन इन्द्रिय वाले जैसे कृमि, लट आदि, त्रि– इन्द्रिय अर्थात् उक्त दो के साथ घ्राणेन्द्रिय सहित जैसे चींटी, खटमल आदि, चतुरिन्द्रिय अर्थात् उक्त तीन के साथ चक्षुरिन्द्रिय सहित मक्खी, मच्छर, बिच्छू, भोरे आदि, पंचेन्द्रिय अर्थात् उक्त चार के साथ श्रोत्रेन्द्रिय वाले पशु, पक्षी, मनुष्य आदि।

मुक्त जीव– मुक्त जीव वे आत्माएं हैं जिन्होंने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, बद्ध जीव वे आत्माएं हैं जो बन्धनग्रस्त हैं। जो संसार रूप पर्याय से रहित है, अष्ट कम क्षय होने से जिसके केवल ज्ञान प्रकट हो गया हो, चार घाति कमक्षय से जो अरिहंत है या अष्टकम क्षय होने से जो सिद्धस्वरूप को पा चुका हो, वह मुक्त जीव है। बन्धन मुक्त होने से मुक्त जीव ऊर्ध्व गति करता है।

2. अजीव तत्त्व– आत्मा तत्त्व के अतिरिक्त संसार में जो कुछ दृश्य या अदृश्य हैं वह सभो अजीव हैं। जिसमें चेतना और उपयोग नहीं हो वह अजीव है। अजीव के पाँच भद हैं– धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय और काल। ठीक ही कहा है– 'आत्मतत्त्वातिरिक्तं यत्किंचित् दृश्यमदृश्यं चास्ति तत्सर्वम् अजीवतत्त्वं प्रोच्यते'।

धर्मास्तिकाय– जो द्रव्य जीव और पुद्गल की गति में उदासीन निमित्त कारण होता है उसे धर्मास्तिकाय कहते हैं जैसे स्वयं गतिशील मछली की गति में जल उदासीन निमित्त कारण होता है।

अधर्मास्तिकाय– जो द्रव्य जीव और पुद्गल की स्थिति (ठहरने) में उदासीन निमित्त कारण होता है उसे अधर्मास्तिकाय कहते हैं जैसे पथिक के ठहरने में वृक्ष की छाया उदासीन निमित्त कारण होती है। पथिक अपनी इच्छा से रुकता है, छाया केवल निमित्त होती है, उपादान नहीं।

आकाशास्तिकाय– आकाश का लक्षण अवगाह (स्थान) देना है अतः जीव आदि द्रव्यों को अवकाश (स्थान) देने का निमित्त कारण जो द्रव्य है उसे आकाशास्तिकाय कहते हैं। यह दो प्रकार का है– लोकाकाश और अलोकाकाश। जीव, अजीव, धर्म, अधर्म जहाँ रहते हैं वह लोकाकाश है। उससे बाहर अनन्त अलोकाकाश है।

पुद्गलास्तिकाय– रूप,रस, गन्ध,स्पर्शवान द्रव्य पुद्गलास्तिकाय कहलाते हैं। मूर्त पदार्थों को पुद्गल माना जाता है। जिनका संयोजन विभाजन सम्भव हो वह पुद्गल है। पुद्गल अणु तथा स्कन्ध भद वाले हैं। अणु पुद्गल का अविभाज्य अंश है। दो या दो से अधिक अणुओं के संयोजन को स्कन्ध कहते हैं। संसार में प्रतीयमान तथा इन्द्रियगम्य सभो भोतिक पदार्थ पुद्गल के अन्तर्गत आते हैं।

काल द्रव्य– काल अनस्तिकाय है क्योंकि वह स्थान नहीं घेरता। पदार्थों में परिणमन (नये से पुराना होना) या वर्तना का निमित्त कारण काल है। द्रव्यों के परिणाम और क्रियाशीलता की व्याख्या काल द्रव्य के द्वारा ही सम्भव है। पल, प्रहर, घंटा आदि व्यवहार काल हैं।

3. आस्रव तत्त्व– काया, वचन और मन की जिस क्रिया से आत्मा में कम प्रवेश करते हैं उसे आस्रवकहते हैं। जैसे जलाशय में जल को प्रवेश कराने वाली नाली को आस्रव कहते हैं उसी प्रकार जीव अपनी क्रिया के अनुसार कम पुद्गलों को आकृष्ट करता है तो उसे आस्रव कहते हैं। जैन दर्शन के अनुसार ज्ञानावरण आदि आठ कम माने गये हैं जो जीव (आत्मा) के स्वाभाविक गुणों को आवृत्त करते हैं। जैसे आत्मज्ञान को आवृत्त करने वाले ज्ञानावरणीय कम कहलाते हैं। आठकम में ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय ये चार घाति कम आत्मस्वरूप का हनन करते हैं तथा वेदनीय, आयु, नाम, गोत्र ये चार अघाति कम हैं।

4. बन्ध तत्त्व– मिथ्यात्व, अविरति (असंयम), प्रमाद, कषाय और योग ये पाँच बन्ध के हेतु हैं। अथवा कषाय (क्रोध, मान, माया, लोभ) और योग (मन, वचन, काया की प्रवृत्ति) बन्ध के हेतु हैं। उपर्युक्त मिथ्यात्व, अविरति ओर प्रमाद का अन्तर्भाव कषाय में हो जाता है। आस्रव से आये हुए कर्मों का बन्ध जाना बन्ध है। बन्ध के चार भद हैं– प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभाव बन्ध और प्रदेशबन्ध।

कम पुद्गल कौन से स्वभाव ;ज्ञान का या दर्शन का या अन्यद्ध का आवरण करता है यह प्रकृतिबन्ध है।

कमपुद्गल जितने समय के लिए बंधते हैं यह स्थितिबन्ध है।

स्वभाव निर्माण के साथ ही उसमें तीव्रता मन्दता आदि रूप में फलानुभव कराने वाली विशेषताएँ बंधती हैं, ऐसी विशेषता ही अनुभाव बन्ध है।कमपुद्गलों का स्वभाव के अनुसार परिणाम को प्राप्त करना प्रदेशबन्ध है।

5. संवर तत्त्व– कर्मास्रव रोकने में आत्मा का जो परिणाम कारण बनता है वह संवर है। तत्त्वार्थसूत्र में कहा है– आस्रवनिरोधः संवरः। वह संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र से होता है।

6. निर्जरा तत्त्व– तप से निर्जरा होती है। पूर्वसंचित कम आत्मा के जिस परिणाम से क्षीण हो जाते हैं वह निर्जरा है। कम का उदय भोगने पर कर्मों का क्षय होना सकाम निर्जरा है तथा बिना भोगे तप द्वारा कमक्षय अकाम निर्जरा कहलाती है। चिकनाई से चिपकी हुई रेत का ढेर चिकनाई मिटते ही झर जाता है तथैव राग द्वेष का अभाव होते ही कम चूर चूर होकर खिर जाते हैं यही निर्जरा है।

7. मोक्षतत्त्व– समस्त कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है। किसी भो क्रिया में राग– द्वेष नहीं होने पर वह क्रिया कम नहीं बनतो और कोई कम शेष नहीं रहना ही मोक्ष है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र तीनों का एकसाथ होना मोक्ष का मार्ग है और आत्मा का साक्षात्कार हो जाना ;कमक्षय हो जाने सेद्ध मोक्ष है। मोक्ष प्राप्त होने पर आठ कर्मों के क्षय होने से आत्मा में अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्तवीर्य, अनन्त सुख आदिगुण व्यक्त हो जाते हैं।

मोक्ष प्राप्त जीव ही सिद्ध या मुक्त कहलाता है इसे ही ईश्वर या तीर्थंकर कह देते हैं किन्तु जैन दर्शन में जगत् के कर्ता के रूप में ईश्वर की सत्ता को स्वीकार नहीं किया गया है।

17.3.2 षड्द्रव्य

उपर्युक्त सप्त तत्त्वों में से जीव तथा अजीव के पाँच भदों को षड्द्रव्य कहा जाता है– जीव, पुद्गलद्रव्य, धर्म द्रव्य, अधर्म द्रव्य, आकाश द्रव्य और काल द्रव्य। जो सत् है उसे द्रव्य माना गया है। सत् की परिभाषा जैन दर्शन के अनुसार 'उत्पाद–व्यय–ध्रौव्ययुक्तं सत्' है अर्थात् जिसमें द्रव्य की अपेक्षा से ध्रौव्य (नित्यता) रहे तथा पर्याय को अपेक्षा से उत्पाद–व्यय ;उत्पत्ति और नाश) होता रहे उसे द्रव्य कहते हैं। संसार के सभो द्रव्यों का स्वभाव नित्य है अतः उनमें गुण ध्रौण्य है किन्तु उनका आकार– प्रकार पर्याय बदलती रहती है पुरानी नष्ट होती है, नई उत्पन्न होती रहती है, अतः उत्पाद–व्यय–ध्रौव्य साथ साथ रहने मे विरोध नहीं है। सभो द्रव्यों में यह परिभाषा घटित होती है क्योंकि सभो द्रव्य गुण और पर्याय वाले हैं– गुणपर्यायवद् द्रव्यम् त.सू. 5 /37

इन छः द्रव्यों में पुद्गल द्रव्य मूर्त है तथा शेष अमूर्त हैं इसलिये पुद्गल के गुण तथा पर्याय गुरु लघु कहे जाते हैं परन्तु शेष अमूर्त द्रव्यों के गुण और पर्याय अगुरुलघु कहे जाते हैं।

जैन दर्शन के अनुसार द्रव्यों के दो प्रकार बताए जाते हैं–1. अस्तिकाय 2. अनस्तिकाय। काल के अतिरिक्त शेष पाँचों द्रव्य अस्तिकाय हैं क्योंकि वे स्थान घेरते हैं। अस्तिकाय द्रव्यों के प्रदेश कायवत् मिले हुए रहते हैं और काल के अणु एक एक पृथक् पृथक् रहते हैं अतः उसे अस्तिकाय नहीं माना जाता।

17.3.3 प्रमाण, नय, स्याद्वाद

उपर्युक्त जीव आदि सप्त तत्त्वों का ज्ञान प्रमाण और नयों से होता है। प्रमाण वस्तु के अनेक अंशों का बोध कराता है और नय वस्तु के एक अंश का बोध कराता है। प्रमाण का लक्षण करते हुए कहा गया है कि जो ज्ञान स्व तथा पर का प्रकाशक हो उसे प्रमाण कहते हैं। अतः प्रमाण के भद जानने से पूर्व ज्ञान के भद जानना आवश्यक है। जैन दर्शन के अनुसार

'मतिश्रुतावधिमनःपर्यायकेवलानि ज्ञानम्' अर्थात् मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्याय ज्ञान और केवलज्ञान ये पाँच ज्ञान हैं।

प्रमाण दो प्रकार का है–1. परोक्षप्रमाण 2. प्रत्यक्षप्रमाण।

मतिज्ञान, श्रुतज्ञान परोक्ष प्रमाण कहलाते हें क्योंकि ये इन्द्रिय तथा मन की सहायता से उत्पन्न होते हैं। अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान और केवल ज्ञान ये तीनों ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाते हैं क्योंकि ये इन्द्रिय तथा मन की सहायता के बिना केवल आत्मा की योग्यता से उत्पन्न होते हैं।

(नोटः न्यायदर्शन में प्रत्यक्ष और परोक्ष का लक्षण भिन्न प्रकार से दिया गया है। न्यायदर्शन में इन्द्रियजन्यज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाण कहा है। जैन दर्शन आत्ममात्र सापेक्ष ज्ञान प्रत्यक्ष

प्रमाण है। कहीं कहीं लौकिक दृष्टि से जैन दार्शनिकों ने न्यायदर्शन के अनुसार इन्द्रिय तथा मनोजन्य मतिज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाण कह दिया है।)

अन्यदर्शनों में माने गये प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द, उपमान आदि का अन्तर्भाव मतिज्ञान में कर दिया गया है क्योंकि जैन दर्शन में मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता, अभिनिबोध इन सभो को पर्यायवाची माना है।

मतिज्ञान– श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियों तथा मन अन्तः इन्द्रिय के निमित्त से होने वाला श्रोत्रज, चाक्षुष, घ्राणज, रसनेन्द्रियज, स्पार्शन तथा मानस ज्ञान मतिज्ञान है जो परोक्षप्रमाण है।

श्रुतज्ञान– इन्द्रिय तथा मन से जन्य शब्दोल्लेख सहित ज्ञान श्रुतज्ञान है। श्रुतज्ञान मतिज्ञानपूर्वक होता है। आचारांगसूत्र आदि 12 अंग तथा अन्यशास्त्रज्ञान श्रुतज्ञान के प्रकार हैं। ये भो परोक्ष प्रमाण माने जाते हैं।

अवधिज्ञान– ज्ञानादि का आवरण (बाधा) का क्षय या उपशम होने पर बिना इन्द्रिय मन की सहायता लिये रूपी पदार्थों का अवधि (सीमा) पर्यन्त ज्ञान हो जाना अवधिज्ञान है, इसे प्रत्यक्ष प्रमाण के अन्तर्गत माना है। यह अवधिज्ञान किसी किसी को जन्म लेते ही प्राप्त होता है उसे भवप्रत्यय कहते हैं और किसी को तप आदि अनुष्ठान पूर्वक प्राप्त होता है उसे यथोक्त निमित्त कहते हैं।

मनः पर्यायज्ञान– मन के पर्यायों (आकृतियों) का साक्षात् जानने वाला ज्ञान मन:पर्याय ज्ञान है। इस ज्ञान से चिन्तनीय वस्तुएं नहीं जानी जाती अपितु चिन्तनशील मन की आकृतियाँ जानी जाती हैं। यह ज्ञान भो आत्ममात्र सापेक्ष होने से प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाता है।

केवलज्ञान– सभो द्रव्यों में और सभो पर्यायों में जिस आत्मज्ञान की प्रवृत्ति होती है वह केवल ज्ञान प्रत्यक्षप्रमाण है। यह केवलज्ञान पूर्ण ज्ञान है इसम एक वस्तु की समस्त पर्यायों एवं सभो वस्तुओं के भो भावों का ग्रहण हो जाता है।

नय– नय पूरी वस्तु को न समझकर उसके अंश का समझना है। नय किसी वस्तु को समझने का दृष्टिकोण है। नय वस्तु के एक अंश को ग्रहण करता है।

नय के भद– नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ और एवंभ्त ये सात नय माने जाते हैं। इनमें से प्रथम तीन वस्तु के सामान्य अंश को ग्रहण करते हैं अतः द्रव्यार्थिक नय हैं तथा शेष चार नय वस्तु के विशेष ग्राही होने से पर्यायार्थिक नय कहलाते हैं।

नैगम नय– संज्ञा, लोकरूढि आदि के आधार पर वस्तु का ज्ञान नैगम नय कराता है, वस्तु में उस कथन की सार्थकता होना आवश्यक नहीं है जैसे किसी अन्धे को नयनसुख नाम से जानना।

संग्रह नय– पदार्थों में रहने वाले सामान्य (जाति) के आधार पर वस्तु को जानना जैसे गोत्व के द्वारा समस्त गायों के समूह को जानना संग्रहनय से सम्भव होता है।

व्यहार नय– जो नय व्यवहार में उपयोग के प्रसंग से ज्ञान कराता है जैसे आटा पिसवाने का अर्थ गेहूँ पिसवाना है यह व्यवहार नय से ही जाना जा सकता है। डॉक्टर नहीं बनने पर भो प्रवेश लेने मात्र से डॉक्टर कहना व्यवहार नय से सम्भव है।

उपर्युक्त तीनों नय सामान्यग्राही होने से द्रव्यार्थिक नय की कोटि मे आते हैं।

ऋजुसूत्र नय– भ्त और भविष्य को छाजड़कर केवल वर्तमान काल से सम्बन्ध रखने वाला नय ऋजुसूत्र नय है। जैसे गमनशीला हो तभो गौ कहना ऋजुसूत्र नय से कथन होगा।

शब्द नय– वर्तमान काल में भो शब्द के काल, लिंग आदि भदों को ध्यान में रखकर वस्तु के अर्थ को समझना शब्दनय है। रम् धातु समान होने पर भो उपसर्ग भद से अर्थ भद समझना जैसे आराम, विराम आदि। आसीत्, अस्ति आदि कालभद समझना। दारा, स्त्री आदि लिंग भद समझना। यह शब्द नय का विषय है।

समभिरूढ नय– शब्द भद से बढकर व्युत्पत्तिभद का ग्रहण समभिरूढ नय से होता है जैसे राजा, नृप, भ्पति आदि एकार्थक शब्दों में भो व्युत्पत्तिभद से अर्थभद समभिरूढ नय से सम्भव है।

एवम्भ्त नय– व्युत्पत्तिभद से भो परे क्रिया योग्यता के आधार पर कथन एवंभ्तनय से होता है जैसे– दरबार लगा हो, न्यायाधिपति न्याय सुन रहा हो उस व्यक्ति को उसी समय न्यायाधिपति कहना या मानना एवंभ्त नय से सम्भव होता है। इस नय से अन्य अवसर पर उसी व्यक्ति को न्यायाधिपति नहीं कहा जा सकता।

उक्त चारों नयों में उत्तरोत्तर सूक्ष्मता एवं पर्याय विशेषता ग्रहीत होती है अतः इन्हें पर्यायार्थिक नय कहा जाता है।

स्याद्‌वाद

संसार की प्रत्येक वस्तु अनन्तधर्मात्मक है यह चिन्तन अनेकान्तवाद कहलाता है तथा एक समय में एक वस्तु के अनेक धर्मों में से केवल एक प्रधान अपेक्षावाले धर्म का ही कथन किया जा सकता है ;शेष धर्म गौण रहते हैंद्ध इसे स्याद्‌वाद कहते हैं। यह स्याद्‌वाद सापेक्षवाद भो कहलाता है क्योंकि कथन शैली में एक बार में एक अपेक्षा से ही कथन होता है यद्यपि अन्य अपेक्षाएं गौण रहती हैं। स्याद् एक अव्यय है जिसका अर्थ है किसी अपेक्षा से। स्याद् का अर्थ शायद या संशय नहीं है। स्याद्‌वाद के आधार पर ही तत्त्वों के स्वरूप को समझने में सुविधा होती है जैसे स्याद् द्रव्यदृष्टि से आत्मा नित्य है, स्याद् पर्यायदृष्टि से आत्मा ;जीवद्ध अनित्य है। यहाँ आत्मा को नित्य और अनित्य कहने में विरोध नहीं हैं क्योंकि दोनों के कथन की दृष्टियों में अपेक्षा भिन्न भिन्न है। यही सापेक्षता का सिद्धान्त स्याद्‌वाद है जिससे परस्पर मतों को समझने में सौहार्द रहता है, कलह नहीं। दृष्टिकोण का भद समझने पर संघर्ष नहीं होता। स्याद्‌वाद जैन दर्शन की ऐसी कुंजी है जिससे जैन तत्त्वमीमांसा तथा प्रमाणमीमांसा के रहस्यों को आसानी से समझा जा सकता है।

स्याद्‌वाद ज्ञान की सापेक्षता का सिद्धान्त है। किसी भो वस्तु के सम्बन्ध में हमारा जो निर्णय होता है वह सभो दृष्टियों से सत्य नहीं होता। उसकी सत्यता विशेष परिस्थिति व विशेष दृष्टि से ही मानी जाती है। परस्पर मतभद का कारण अपने विचारों को ही सत्य मान लेना है। इसके लिए जैन दार्शनिक 'एक हाथी व छः अन्धों' का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं। जैन परम्परा के अनुसार परामर्श सात प्रकार के हैं जिसे सप्तभगी भो कहा जाता है–

1. स्यात् अस्ति–यह भावात्मक वाक्य है।
2. स्यात् नास्ति– यह अभावात्मक परामर्श है।
3. स्यात् अस्ति च नास्ति च– एक वस्तु की सत्ता विशेष दृष्टिकोण से हो भो सकती है नहीं भो।
4. स्यात् अवक्तव्यम्– यदि किसी परामर्श में परस्पर विरोधी गुणों का विचार करना हो तो स्यात् अवक्तव्यम् का प्रयोग करना चाहिए। जब निश्चित रूप से न कहा जा सके।
5. स्यात् अस्ति च अवक्तव्यम् च– एक वस्तु एक ही समय में हो सकती है और फिर भो अवक्तव्यम् रह सकती है।
6. स्यात् नास्ति च अवक्तव्यम् च– किसी विशेष दृष्टिकोण से किसी भो वस्तु के विषय में 'नहीं है' कह सकते हैं परन्तु दृष्टि स्पष्ट न होने पर कुछ भो नहीं कहा जा सकता।
7. स्यात् अस्ति च नास्ति च अवक्तव्यम् च– यह एक दृष्टि से वस्तु की स्थिति, दूसरी से नकारात्मक स्थिति व तीसरी दृष्टि से अस्पष्ट अतः अवक्तव्य हो सकती है।

स्याद्‌वाद को सन्देहवाद नहीं कहा जा सकता। जैन ज्ञान की सम्भावना की सत्यता में विश्वास करता है। वह पूर्ण ज्ञान की सम्भावना पर भो विश्वास करता है। यह सापेक्षता का सिद्धान्त है। जैन मतानुसार ज्ञान निभर करता है स्थान, काल और दृष्टिकोण पर।

17.3.4 जैन आचार

जैन दर्शन की आचार परम्परा में श्रावक श्राविका (गृहस्थों) के लिए 12 अणुव्रतों का विधान तथा साधु साध्वी (मुनियों) के लिए पंचमहाव्रत का विधान किया गया है। साधु साध्वी

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पूर्ण पालन करते हैं उनके आचरण में किसी काल, स्थान , परिस्थिति की छूट नहीं रहती है। वे हिंसा आदि न तो करते हैं, न करवाते हैं और न ही अनुमोदन करते हैं मन, वचन और काया से। इस प्रकार वे पंचमहाव्रत का पालन तीन करण और तीन योग से करते हैं। गृहस्थ लोगों को संसारी व्यवहार के कारण स्थूल हिंसा, झूठ, चोरी आदि के त्याग का विधान है अकारण हिंसादि का त्याग विहित है किन्तु गृहकार्यों या आजीविका में हिंसादि का पूर्ण त्याग सम्भव नहीं है अतः उनके व्रत अणुव्रत कहलाते हैं।

जैन साधु साध्वी कनक कामिनी के त्यागी, केशलोचन करने वाले, पदयात्री, निर्दोष भिक्षाभोजी, श्वेतवस्त्रधारी अथवा दिगम्बर, तपस्वी, संयमी होते हैं।

जैनदर्शन में श्रमणाचार गृहत्यागी साधु साध्वियों के लिए विहित हैं तथा श्रावकाचार गृहस्थ महिला–पुरुषों के लिये।

पंच समिति, त्रिगुप्ति, दस धर्म, बारह अनुप्रेक्षा, बावीस परीषहजय, बारह श्रावक के व्रत और पाँच साधु के महाव्रत जैन आचार की आधारशिला है जिसे सम्यक् चारित्र भो कहा जाता है।

सम्यक् चरित्र के लिए समिति का पालन आवश्यक है। हिंसा से बचने के लिए निश्चित मार्ग से जाना ईर्या समिति है, नम्र और अच्छी वाणी बोलना भाषा समिति है, उचित भिक्षा लेना एषणा समिति व चीजों को उठाने और रखने में सतर्कता आदान निक्षेपण समिति है। शून्य स्थान में मलमूत्र विसर्जन उत्सर्ग समिति है।

मन, वचन और शारीरिक कर्मों का संयम त्रिविध गुप्ति है। यही काय, वाग् और मनोगुप्ति कहलाती है। सत्य, क्षमा, शौच, तप, संयम, त्याग, विरक्ति, मार्दव, सरलता और ब्रह्मचर्य इन दस धर्मों का पालन आवश्यक है। जीव अजीव के स्वरूप का चिन्तन अनुप्रेक्षा है। सर्दी, गर्मी आदि से प्राप्त दुःखों को सहना परीषहजय है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पंच महाव्रत है। इन सब आचार को अपनाकर मनुष्य मोक्षानुभ्ति के योग्य होता है। कर्मों का आस्रव जीव में बन्द हो जाता है। पुराने कर्मों का क्षय हो जाता है। इस प्रकार जीव अपनी स्वाभाविक अवस्था को प्राप्त करता है। यही मोक्ष है। मोक्ष का अर्थ सिर्फदुःखों का नाश ही नहीं अपितु आत्मा के अनन्त चतुष्टय– अनन्त ज्ञान, शक्ति, दर्शन और आनन्द की प्राप्ति भो है।

जैन दर्शन ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं रखता न ही उसे सृष्टि का रचयिता मानते हैं क्योकि ईश्वर अवयवहीन है, अतः जगत् की सृष्टि नहीं कर सकता। यदि ईश्वर को करुणा या अन्य किसी स्वार्थ से सृष्टि रचना को प्रेरित माने तो उसकी न्यूनता परिलक्षित होगी। सृष्टि के पूर्व दुःखों का निर्माण भो असंगत है। जैन दर्शन ईश्वर को एक सर्वशक्तिमान और पूर्ण मानने का विरोध करता है। जैन धर्म मूल्यों में विश्वास करता है। त्रिरत्न व पंच महाव्रत जैन को धर्म के रूप में स्थापित करने में सहायक हैं। नैतिक मूल्यों के नियन्त्रण के लिए वे तीर्थंकरों में विश्वास करते हैं और अर्हत् रूप में उनके प्रति भक्ति भाव प्रदर्शित करते हैं जो मात्र व्यावहारिक रूप से ही ईश्वर की संज्ञा है।

सर्वदर्शनसंग्रह से चयनित अंश

नास्तिक दर्शन परम्परा में चार्वाक, बौद्ध व जैन दर्शन प्रमुख हैं। इनकी दार्शनिक विचारधारा का संक्षेप में प्रतिपादन करते हुए बौद्धदर्शन के सिद्धान्तों का समन्वय करते हुए सर्वदर्शनसंग्रह में कहा गया है–

बौद्धानां सुगतो देवो विश्वं च क्षणभगुरम्।
आर्यसत्याख्यया तत्त्वचतुष्टयमिदं क्रमात्।।30।।

दुःखमायतनं चैव ततः समुदयो मतः।
मार्गश्चैत्यस्य च व्याख्या क्रमेण श्रूयतामतः।। 31।।

दुःखं संसारिणः स्कन्धास्ते च पंच प्रकीर्तिताः।
विज्ञानं वेदना संज्ञा संस्कारो रूपमेव च।। 32।।

पंचेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषयाः पंचमानसम्।
धर्मायतनमेतानि द्वादशायतानि तु।। 33।।
रागादीनां गणो यस्मात्समुदेति नृणां हृदि।
आत्मात्मीयस्वभावाख्यः स स्यात्समुदयः पुनः।। 34।।
क्षणिकाः सर्वसंस्कारा इति या वासना स्थिरा।
स मार्ग इति विज्ञेयः स च मोक्षोऽभिधीयते।। 35।।
प्रत्यक्षमनुमानं च प्रमाणद्वितयं तथा।
चतुष्प्रस्थानिका बौद्धाः ख्याता वैभाषिकादयः।। 36।।
अर्थो ज्ञानान्वितो वैभाषिकेण बहु मन्यते।
सौत्रान्तिकेन प्रत्यक्षग्राह्योऽर्थो न बहिर्मतः।। 37।।
आकारसहिता बुद्धिर्योगाचारस्य संमता।
केवलां संविदं स्वस्थां मन्यन्ते मध्यमाः पुनः।। 38।।
रागादिज्ञानसंतानवासनोच्छेदसम्भवा।
चतुर्णामपि बौद्धानां मुक्तिरेषा प्रकीर्तिता।। 39।।
कृत्तिः कमण्डलुमौण्ड्यं चीरं पूर्वाह्नभोजनम्।
संघो रक्ताम्बरत्वं च शिश्रिये बौद्धभिक्षुभिः।। 40।।

विवेकविलास में बौद्धमत को इस प्रकार कहा गया हैः–

बौद्धों के देवता सुगत (बुद्ध) हैं। संसार क्षणभगुर है। आर्यसत्य नामक चार तत्त्व इस प्रकार हैं।। 30।। दुःख, दुःख का स्थान, समुदय और मार्ग इनकी क्रमशः व्याख्या श्रोतव्य है।। 31।। दुःख का अर्थ है सांसारिक प्राणी के पाँच स्कन्ध–

1. विज्ञान 2. वेदना 3. संज्ञा 4. संस्कार 5.रूप।। 32।। पाँच इन्द्रियां, शब्दादि पाँच विषय, मन तथा धर्म ये बारह आयतन हैं।। 33।। मनुष्यों के हृदय में जिस कारण से राग आदि का समूह उत्पन्न होता है वह अपने स्वभावरूप से जाना जाने वाला समुदय है।। 34।। सभो संस्कार क्षणिक हैं यह जो स्थिर वासना संस्कार है इसे ही मार्ग जानना चाहिय। इसे ही मोक्ष भो कहते हैं।। 35।। प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाण हैं। वैभाषिक आदि (सौत्रान्तिक, योगाचार, माध्यमिक) चार बौद्धों के प्रस्थान हैं।। 36।। वैभाषिक लोग अर्थ को ज्ञानान्वित (प्रत्यक्षगम्य) मानते हैं। सौत्रान्तिक बाह्य अर्थ को प्रत्यक्ष द्वारा ग्राह्य नहीं मानते हैं, अपितु अनुमेय मानते हैं।। 37।। योगाचार के मत से अर्थ विज्ञान (बुद्धि) का ही आकार विशेष हैं। माध्यमिक केवल ज्ञान को ही अपने में स्थित मानते हैं।। 38।।

उपर्युक्त सभो बौद्ध मानते हैं कि राग आदि ज्ञान की परम्परा रूपी वासना संस्कार के नष्ट होने पर मुक्ति कहलाती है।। 39।। चर्म, कमण्डलु, मुण्डन, वस्त्र, एकबार पूर्वाह्न में भोजन, संघ में रहना, कषाय–वस्त्र धारण करना ये बौद्ध भिक्षु स्वीकार करते हैं।। 40।।

जैन दर्शन के सार को संकलित करते हुए सर्वदर्शनसंग्रह में कहा गया है–

बलभोगोपभोगानामुभयोर्दानलाभयोः।
अन्तरायस्तथा निद्रा भोरज्ञानं जुगुप्सितम्।। 51।।
हिंसा रत्यरती रागद्वेषावविरतिः स्मरः।
शोको मिथ्यात्वमेतेऽष्टादश दोषा न यस्य सः।। 52।।
जिनो देवो गुरुः सम्यक्तत्त्वज्ञानोपदेशकः।
ज्ञानदर्शनचारित्राण्यपवर्गस्य वर्तनी।। 53।।
स्याद्वादस्य प्रमाणे द्वे प्रत्यक्षमनुमापि च।
नित्यानित्यात्मकं सर्वं नव तत्त्वानि सप्त वा।। 54।।
जीवाजीवौ पुण्यपापे चास्रवः संवरोऽपि च।
बन्धो निर्जरणं मुक्तिरेषां व्याख्याऽधुनोच्यते।। 55।।

चेतनालक्षणो जीवः स्यादजीवस्तदन्यकः।
सत्कमपुद्गलाः पुण्यं पापं तस्य विपर्ययः।। 56।।
आस्रवः स्रोतसो द्वारं संवृणोतीति संवरः।
प्रवेशः कमणां बन्धो निर्जरस्तद्वियोजनम्।। 57।।
अष्टकमक्षयान्मोक्षोऽथान्तर्भावश्च कैश्चन।
पुण्यस्य संवरे पापस्यास्रवे क्रियते पुनः।। 58।।
लब्धानन्तचतुष्कस्य लोकागूढस्य चात्मनः।
क्षीणाष्टकमणो मुक्तिर्निर्व्यावृत्तिर्जिनोदिता।। 59।।
सरोजहरणा भक्षभजो लुंचितमूर्धजाः।
श्वेताम्बराः क्षमाशीला निःसंगा जैनसाधवः।। 60।।
लुंचिताः पिच्छिकाहस्ताः पाणिपात्रा दिगम्बराः।
ऊर्ध्वाशिनो गृहे दातुर्द्वितीयाः स्युर्जिनर्षयः।। 61।।
भक्ते न केवली न स्त्री मोक्षमेति दिगम्बरः।
प्राहुरेषामयं भदो महांश्वेताम्बरैः सह।। 62।।

सर्वदर्शनसंग्रहकार माधवाचार्य ने जिनदत्तसूरी रचित विवेक विलास से जैनमत का सारांश निम्न प्रकार से व्यक्त किया है। बल,भोग, उपभोग (इन्द्रिय सुख),दान तथा लाभ के अन्तराय, निद्रा, भय, अज्ञान, घृणा, हिंसा, रति, अरति, राग, द्वेष, अविरति, काम, शोक और मिथ्यात्व इन अठारह दोषों से रहित जिनगुरु सम्यक्रूप से तत्त्वज्ञान का उपदेशक है। ज्ञान दर्शन चारित्र्य ये अपवर्ग के मार्ग हैं।। 51–53।। स्याद्वाद के सिद्धान्त में दो प्रमाण हैं– प्रत्यक्ष और अनुमान। तत्त्व नौ या सात हैं जो सभो स्याद्वाद के अनुसार नित्यानित्यात्मक हैं।। 54।। जीव– अजीव, पुण्य–पाप, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरण और मुक्ति इनकी व्याख्या की जाती है।। 55।। चेतना जीव का लक्षण है, उससे भिन्न अचेतन अजीव होता है, सत्कार्यों से उत्पन्न होने वाले पुद्गल पुण्य हैं उससे विपरीत बुरे कार्यों से उत्पन्न पुद्गल पाप हैं।। 56।। आस्रव पाप स्रोत का द्वार है, जो उसे ढक ले वह संवर है। कर्मों का प्रवेश करना बन्ध है और उनसे अलग हो जाना निर्जरा है।। 57।। आठ प्रकार के कर्मों का क्षय हो जाने पर मोक्ष प्राप्त होता है। पुण्य का अन्तर्भाव संवर में करने तथा पाप का आस्रव में करने से तत्त्व सात रह जाते हैं।। 58।। अनन्त ज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य और अनन्त सुख जिसके प्रकट हो गए हों, उसको जिनेश्वर द्वारा कथित निर्व्यावृत्ति अर्थात् निर्वाणरूपी मुक्ति की प्राप्ति होती है। जहाँ से लौटना नहीं होता।। 59।। जैन श्वेताम्बर एवं दिगम्बर के आचार पक्ष को कहते हैं कि रजोहरण रखने वाले, गोचरी (भिक्षा) से आहार लेने वाले, केशों का लोच करने वाले, क्षमाशील, आसक्ति रहित जैन साधु हैं। (जिनमें श्वेत वस्त्रधारी श्वेताम्बर हैं)।। 60।। और इन जैन साधुओं में लुंचित केश वाले मोर के पंख का रजोहरण हाथ में लिए हुए, हाथों को ही पात्र मानने वाले करपात्री तथा गोचरीदाता के घर पर ही खड़े खड़े आहार लेने वाले जैन साधु दिगम्बर हैं।। 61।। दिगम्बर साधुओं की मान्यता है कि केवल ज्ञान से युक्त पुरुष भोजन नहीं करते और स्त्री को मोक्ष नहीं मिलता, यह श्वेताम्बर और दिगम्बरों में भद माना जाता है।। 62।।

टिप्पणी – स्त्रैण मलिन विचारों से मुक्ति प्राप्त नहीं होती मुक्ति के लिए पौरुष पुरुषार्थ प्रयत्न आवश्यक है।

इस प्रकार सामान्यतः संक्षेपरूप से दोनों दर्शनों के सिद्धान्तों को समझा जा सकता है।

17.4 पारिभाषिक शब्दावली

बौद्ध

1. आलम्बन– विषयों का आधार आलम्बन है।
2. समनन्तर– उत्तर क्षण के ज्ञान को आकार ग्रहण की शक्ति देते हुए पूर्व क्षण का ज्ञान समनन्तर है

3. सहकार्य– मन से वस्तु का संयोग होना भी सहकारी ही है।
4. अधिपति– इन्द्रियों को अधिपति कहा गया है।
5. रूपस्कन्ध– जिनसे विषयों का निरूपण होता है और जो विषय हैं–विषयाणीन्द्रियाणि।
6. विज्ञानस्कन्ध– आलयविज्ञानप्रवृत्तिविज्ञानप्रवाहो विज्ञानस्कन्धः।
7. वेदनास्कन्ध– प्रागुक्तस्कन्धद्वयसम्बन्धजन्यः सुखदुःखादिप्रत्ययप्रवाहो वेदनास्कन्धः।
8. संज्ञास्कन्ध– शब्दोल्लेखिसंवित्प्रवाहः संज्ञास्कन्धः।
9. संस्कारस्कन्ध– वदनास्कन्धनिबन्धना रागद्वेषादयः क्लेशाः उपक्लेशाश्च मदमानयो धर्माधर्मौ च संस्कारस्कन्धः।

जैन

10. परोक्ष– अविशदप्रतिभासं परोक्षम्।
11. प्रत्यभिज्ञान्– दर्शनस्मरणकारणकं संकलनं प्रत्यभिज्ञानम्।
12. नयः– नानास्वभावेभ्यो व्यावृत्य एकस्मिन् स्वभावे वस्तु नयति प्राप्नोतीति नयः।
13. धर्म– जीवपुद्गलानां गतिरूपपरिणतानामुदासीनतया गतिहेतुत्वम्।
14. अधर्म– तेषां तथैव स्थितिरूपपरिणतानां स्थितिहेतुत्वम्।
15. आकाश– यस्मिन् सर्वे पदार्थाः अवकाशमाप्नुवंति तदाकाशम्।
16. काल– यः स्वयं परिवर्तमानानां वस्तूनां परिवर्तनायां निमित्तकारणं भवति स एव कालः।
17. प्रमाणम्– सम्यग्ज्ञानम्।
18. संशय– संशयो हि प्रमाणासिद्धानेककोटिस्पर्शात्मकः प्रत्ययः।
19. स्मृति– तदित्याकारा प्रागनुभूतवस्तुविषया स्मृतिः।

17.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. बौद्ध दर्शन के अनुसार दुःख सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।
2. बुद्ध के चार आर्यसत्यों की व्याख्या कीजिए।
3. बुद्ध के अनुसार अष्टांगिकमार्ग को स्पष्ट कीजिए।
4. बौद्धों के अनुसार क्षणिकवाद का प्रतिपादन कीजिए।
5. बौद्धों के अनात्मवादी सिद्धान्त की समीक्षा कीजिए।
6. बौद्ध दर्शन के सम्प्रदायों का विवेचन कीजिए।
7. बौद्धदर्शन के धार्मिक सम्प्रदाय कौन कौन से हैं? परिचय दीजिए।
8. जैन दर्शन के अनुसार प्रमाण कौन कौन से हैं? परिचय दीजिए।
9. जैन दर्शन के अनुसार स्वीकृत तत्त्वों का विवेचन कीजिए।
10. जैन दर्शन के स्यादवाद का प्रतिपदान कीजिए।
11. जैन दर्शन के अनुसार त्रिरत्न कौन से हैं?

बोध प्रश्नों के उत्तर

1. इकाई सं. 17.2.1 देखें।
2. इकाई सं.17.2.1 देखें।
3. इकाई सं. 17.2.1 का 4 बिन्दु दुःख निरोध के मार्ग देखें।
4. इकाई सं.17.2.2 देखें।
5. इकाई सं. 17.2.3 देखें।
6. इकाई सं. 17.2.6 देखें।
7. इकाई सं. 17.2.7 देखें।

8. इकाई सं. 17.3.3 देखें।

9. इकाई सं. 17.3.1 देखें।

10. इकाई संख्या17.3.3 देखें।

11. इकाई संख्या 17.3.4 देखें।

17.6 सारांश

इकाई 17 में नास्तिक दर्शनों का सामान्य परिचय दिया गया है जिसमें बौद्ध एवं जैन दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों, विचारधाराओं को प्रस्तुत करते हुए उनकी तत्त्वमीमांसा, प्रमाणमीमांसा एवं आचारमीमांसा का वर्णन किया गया है। चार्वाक दर्शन का परिचय हम अगली इकाई में प्राप्त करेंगे।

17.7 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय दर्शन का इतिहास– एस.एन. दासगुप्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2003.

2. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, प्रो0 हरेन्द्र सिन्हा, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली,1991.

3. भारतीय दर्शन, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी,1991.

4. सर्वदर्शनसंग्रह, प्रो0 उमाशंकर शर्मा ऋषि, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी,1984.

5. भारतीय दर्शन– डॉ.राधाकृष्णन, राजपाल एण्ड सन्ज, काश्मीरगेट, दिल्ली,2004.

6. जैनदर्शन सार, चैनसुखदास, वीर पुस्तक भण्डार,1998.

7. उमास्वाति : तत्त्वार्थसूत्र, (सम्पा.) सुखलाल संघवी, भारत जैन महामण्डल, वर्धा, 1951.

इकाई– 18

चार्वाक दर्शन के प्रमुख सिद्धान्त (सर्वदर्शनसंग्रह)

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

भारतीय दर्शन की दो धाराएं प्रचलित हैं– नास्तिक व आस्तिक। नास्तिक दर्शन परम्परा में चार्वाक, बौद्ध व जैन दर्शन आते हैं और आस्तिक दर्शन में न्याय – वैशेषिक, सांख्य–योग, पूर्वमीमांसा व उत्तर मीमांसा ये षड्दर्शन सम्मिलित हैं। नास्तिक दर्शन परम्परा में चार्वाक पूर्णतः अनीश्वरवादी, प्रत्यक्षवादी एवं जड़वादी दर्शन है। इसके प्रवर्तक बृहस्पति कहे जाते हैं। एकमात्र प्रत्यक्ष को प्रमाण मानने के कारण वह दृष्ट पदार्थों की सत्ता ही स्वीकार करता है और ईश्वर व मोक्ष के सम्बन्ध में उसके विचार भो अन्य दर्शनों से बिल्कुल अलग हैं। इस अध्याय में आप निम्न बिन्दुओं का अध्ययन करेंगे। इसके माध्यम से चार्वाक दर्शन की विचारधारा का पूर्ण परिचय हो जाता है।

- चार्वाक की प्रमाण मीमांसा का सामान्य अध्ययन कर सकेंगे।
- चार्वाक की तत्त्वमीमांसा का सामान्य परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- चार्वाक के तत्त्वों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
- चार्वाक की मोक्ष विषयक अवधारणा को समझ सकेंगे।
- चार्वाक की विचारधारा को जान सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

एम.ए पूर्वार्द्ध के तृतीय प्रश्नपत्र भारतीय दर्शन के अन्तर्गत आपने 17 वीं इकाई में नास्तिक दर्शनों के अन्तर्गत बौद्ध एवं जैनदर्शन का परिचय प्राप्त किया। अब इकाई 18 में आप चार्वाक दर्शन की परम्परा एवं विचारधारा का अध्ययन करेंगे। इस इकाई का अध्ययन कर आप भारतीय दर्शनों में प्रमुख जड़वादी चार्वाक दर्शन के सिद्धान्तों से परिचित हो सकेंगे।

चार्वाक दर्शन

भारतीय दर्शन की प्रमुख प्रवृत्ति आध्यात्मिक है लेकिन भारतीय विचारधारा में अध्यात्मवाद के अतिरिक्त जड़वाद के भो दर्शन होते हैं। नास्तिक दर्शन की परम्परा में चार्वाक एक जड़वादी दर्शन है। इनके अनुसार भ्त ही चरम सत्ता हैं तथा इन्हीं से चैतन्य अथवा मन का आविर्भाव होता है। भारतीय दर्शन में चार्वाक ही जड़वाद का एकमात्र निदर्शन है। इसके प्रवर्तक बृहस्पति कहे गए हैं।

चार्वाक अत्यन्त प्राचीन दर्शन है। चार्वाक शब्द 'चर्व' धातु से निर्मित है। 'चर्व' का अर्थ 'चबाना अथवा खाना' होता है।

अन्य विद्वान् 'चारु वाक्' इन दो शब्दों से 'चार्वाक' शब्द निर्मित मानते हैं, अतः चार्वाक का अर्थ हुआ 'मीठे वचन बोलने वाला'। इस दर्शन के सिद्धान्त सामान्य लोगों को प्रिय एवं मधुर प्रतीत होते हैं क्योंकि वे सुख एवं आनन्द की चर्चा करते हैं।

कुछ विद्वान् चार्वाक व्यक्तिविशेष का नाम मानते हैं, जो जड़वाद के समर्थक थे। चार्वाक दर्शन को लोकायत मत भो कहा जाता है। यह दर्शन सामान्य जनता के विचारों का प्रतिनिधित्व करता है। डॉ.राधाकृष्णन का मत है कि चार्वाक को लोकायत इसलिये कहा जाता है कि वह इस लोक में ही विश्वास करता है। इस लोक के अतिरिक्त दूसरे लोक का, जिसे लोग परलोक कहते हैं, चार्वाक निषेध करता है।

18.2 प्रमाणमीमांसा

चार्वाक के अनुसार प्रत्यक्ष ही ज्ञान का साधन है और इसीलिए वह प्रत्यक्ष से ज्ञेय भ्तों की ही सत्ता स्वीकार करता है और उन्हीं पदार्थों या विचारों का प्रतिपादन करता है जो प्रत्यक्षगोचर हैं। जब प्रत्यक्ष ही ज्ञान का एकमात्र साधन है तो प्रत्यक्ष द्वारा ज्ञेय विषय ही एकमात्र सत्य है। प्रत्यक्ष से केवल भ्त का ज्ञान होता है। इसलिये भ्त को छोडकर कोई भो तत्त्व यथार्थ नहीं है। ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग व कम सिद्धान्त कल्पना मात्र हैं, क्योंकि वे अप्रत्यक्ष हैं।

18.2.1 प्रत्यक्षप्रमाण

चार्वाक का सम्पूर्ण दर्शन उसके प्रमाण विषयक चिन्तन पर आधारित है। प्रमाण विज्ञान इस दर्शन की विचारधारा निश्चित करता है। ज्ञान के साधन की विवेचना करना प्रमाणविज्ञान का मुख्य उद्देश्य है। चार्वाक प्रत्यक्ष को ही ज्ञान का एकमात्र साधन मानता है। उसके अनुसार यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति प्रत्यक्ष से ही सम्भव है। चार्वाक प्रत्यक्ष को ही एकमात्र प्रमाण मानता है– 'प्रत्यक्षमेव प्रमाणम्'।

वस्तुतः प्रत्येक दर्शन ने स्वस्वीकृत पदार्थ एवं सिद्धान्तों को प्रमाणित करने के लिए प्रमाणों का प्रतिपादन किया है। चार्वाक द्वारा स्वीकृत पदार्थों की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण ही पर्याप्त है। प्रत्यक्ष को एकमात्र प्रमाण मानने के कारण चार्वाक अन्य प्रमाणों का खण्डन करता है। अन्य प्रमाणों के खण्डन द्वारा वह प्रत्यक्ष की महत्ता को प्रतिपादित करता है। सर्वदर्शनसंग्रह में कहा गया है–

प्रत्यक्षैकप्रमाणवादितया अनुमानादेः अनंगीकारेण प्रामाण्याभावात्।

ये चार्वाक केवल प्रत्यक्ष ज्ञान को ही प्रमाण मानते हैं, अनुमानादि को अस्वीकार करने से उनको प्रमाण नहीं माना गया है। एकमात्र प्रत्यक्ष को प्रमाण मानने के कारण वह अन्य प्रमाणों का खण्डन करता है।

इस प्रकार चार्वाक प्रत्यक्ष के अतिरिक्त किसी अन्य प्रमाण की सत्ता स्वीकार नहीं करता। पंचज्ञानेन्द्रियों द्वारा अनुभ्त वस्तु ही प्रमाणभ्त है। चार्वाक अस्पृष्ट, अनास्वादित, अनाघ्रात, अदृष्ट तथा अश्रुत पदार्थ की सत्ता नहीं मानते। उनके अनुसार एकमात्र प्रत्यक्ष ही यथार्थज्ञान का साधन है। प्रत्यक्ष के माध्यम से वर्तमान देशकाल से अवच्छिन्न पदार्थ का ज्ञान होता है।

चार्वाक के अनुसार वह प्रत्यक्ष दो प्रकार का है– बाह्य प्रत्यक्ष और मानस प्रत्यक्ष। ज्ञानेन्द्रियों द्वारा बाह्य वस्तु या पदार्थों से संयोग होने पर बाह्य प्रत्यक्ष होता है। मानस प्रत्यक्ष बाह्य

प्रत्यक्ष के अधीन होता है। इसमें मन उसी दिशा में क्रिया करता है, जो प्रत्यक्ष से प्राप्त होता है।

प्रत्यक्ष को एकमात्र प्रमाण मानने के कारण ये भ्त द्रव्य को हो एकमात्र सद्वस्तु मानते हैं। आत्मा, जन्मान्तरवाद, कम, ईश्वर आदि कोई अस्तित्व नहीं रखते, क्योंकि ये प्रत्यक्ष नहीं हैं। चार्वाक मात्र जगत् का अस्तित्व मानते हैं क्योंकि वह प्रत्यक्ष दिखाई देता है। चार्वाक पृथ्वी, जल, तेज और वायु इन चार तत्त्वों को जगत् का उपादान कारण मानते हैं क्योंकि ये प्रत्यक्षगम्य है। वस्तुतः चार्वाक दर्शन प्रत्यक्षवादी है। वह प्रत्यक्षातीत पदार्थों में विश्वास नहीं करता।

18.2.2 अनुमान प्रमाण का खण्डन

बौद्ध, जैन, न्याय, वैशेषिक अनुमान की प्रामाणिकता मानते हैं। प्रत्यक्ष के द्वारा समस्त प्रमेय पदार्थों की सत्ता सिद्ध नहीं की जा सकती और न समस्त लोक व्यवहार की उपपत्ति सिद्ध हो सकती है, अतः अनुमान प्रमाण मानना आवश्यक है लेकिन चार्वाक अनुमान को प्रमाण नहीं मानते।

अनुमान व शब्द को प्रमाण मानने वाले कहते हैं कि धुआं देखकर अग्नि के प्रति बुद्धिमान् लोगों की प्रवृत्ति का कारण एवं नदी के किनारे फल है इस बात को सनकर फल चाहने वाले का नदी के किनारे चल पडने का कारण अनुमान व शब्द प्रमाण ही है।

चार्वाक के अनुसार यह केवल कल्पना ही है। अनुमान को प्रमाण मानने वाले लोग, सम्बन्ध बताने वाले लिंग को मानते हैं जो व्याप्ति और पक्षधर्मता से युक्त रहता है। व्याप्ति से तात्पर्य है उपाधि से रहित पक्ष और लिंग का सम्बन्ध–

व्याप्तिपक्षधर्मताशालि हि लिंगगमकम् अभ्युपगतमनुमानप्रामाण्यादिभिः। व्याप्तिश्च उभयविधोपाधिविधुरः सम्बन्धः। स च सत्तया चक्षुरादिवन्नांगभावं भजते किं तु ज्ञाततया।

अनुमान को संशय रहित तभो माना जा सकता है जब व्याप्ति वाक्य सन्देह रहित हो। अनुमान की वास्तविकता व्याप्ति की सत्यता पर अवलम्बित है। यदि व्याप्तिवाक्य मिथ्या हो तो अनुमान निश्चय ही अवास्तविक होगा।

सर्वदर्शनसंग्रह में कहा है–

न तावत्प्रत्यक्षम्। तच्च बाह्यमान्तरं वाऽभिमतम्। न प्रथमः। तस्य सम्प्रयुक्तज्ञानजनकत्वेन भवति प्रसरसम्भवेऽपि भ्तभविष्यतोस्तदसम्भवेन सर्वोपसहारवत्याः व्याप्ते दुर्ज्ञानत्वात्। न च व्याप्तिज्ञानं सामान्यगोचरमिति मन्तव्यम्। व्यक्त्योरविनाभावाभावप्रसंगात्। नाऽपि चरमः अन्तःकरणस्य बहिरिन्द्रियतन्त्रत्वेन बाह्येऽर्थे स्वातन्त्र्येण प्रवृत्त्यनुपपत्तेः। तदुक्तम्– चक्षुराद्युक्तविषयं परतन्त्रं बहिर्मनः।

चार्वाक के अनुसार प्रत्यक्ष प्रमाण से तो व्याप्ति ज्ञान नहीं हो सकता। प्रत्यक्ष या तो बाह्य होता है या आन्तरिक। इनमें बाह्य प्रत्यक्ष से व्याप्तिज्ञान होना असम्भव है, बाह्य प्रत्यक्ष केवल बाहरी इन्द्रियों से उत्पन्न होता है। बाह्य प्रत्यक्ष सम्बद्ध विषयों का ही ज्ञान उत्पन्न कर सकता है। यह ज्ञान वर्तमान काल के विषयों में तो सफल हो सकता है लेकिन भतकाल और भविष्यकाल की वस्तुओं का ज्ञान देने में तो असफल हो जाएगा। व्याप्ति सभो कालों का संग्रह करने वाली है, अतः प्रत्यक्ष से इसका ज्ञान होना दुष्कर है। व्याप्ति का ज्ञान सामान्य के विषय में होता है ऐसा भो नहीं है क्योंकि ऐसा होने पर दो व्यक्तिगत उदाहरणों में व्याप्ति सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जा सकता।

चार्वाक अनुमान को प्रमाण नहीं मानता। अपने मत के समर्थन में वे कहते हैं कि अनुमान व्याप्ति पर आधारित है। अनुमान को सन्देह रहित तभो माना जा सकता है जब व्याप्ति वाक्य सन्देह रहित हो।

व्याप्ति वाक्य को अनुमान द्वारा स्थापित नहीं कर सकते। व्याप्ति की सत्यता अनुमान द्वारा असिद्ध है। यदि व्याप्ति को अनुमान द्वारा स्वीकृत करें तो उसकी अनुमान सत्यता भो एक दूसरी व्याप्ति पर निभर होगी। इस प्रकार अन्योन्याश्रय दोष उत्पन्न हो जाता है, क्योंकि व्याप्ति अनुमान पर निभर है और अनुमान व्याप्ति पर।

नाप्यनुमानं व्याप्तिज्ञानोपायः तत्र तत्रापि एवमित्यनवस्थादौःस्थ्यप्रसंगात्। नापि शब्दस्तदुपायः काणादमतानुसारेण अनुमाने एवान्तर्भावात्।
उनके अनुसार व्याप्ति की स्थापना शब्द प्रमाण से भो नहीं हो सकती क्योंकि कणाद के अनुसार शब्द अनुमान के ही अन्तर्गत है। इसलिए अनुमान के खण्डन के साथ शब्द का भो खण्डन हो जाता है। यदि शब्द को अनुमान के अन्तर्गत नहीं माने तो वृद्ध पुरुष के व्यवहाररूपी चिह्न की तो आवश्यकता पड़ेगी ही। इससे फिर अनवस्था दोष हो सकता है। शब्द प्रमाण में शक्तिग्रह से वस्तुओं का बोध होता है। शक्तिग्रह के साधनों में वृद्ध पुरुष का व्यवहार भो है किन्तु यह शक्तिग्रह अनुमान प्रमाण से ही होता है। इस प्रकार शक्तिग्रह के लिए दूसरे व्यवहाररूपी लिंग की आवश्यकता होगी अर्थात् दूसरा अनुमान चाहिए और उस अनुमान में भो शक्तिग्रह चाहिए। शक्तिग्रह के सम्बन्ध में व्याकरणशास्त्र में लिखा ह–
शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानात्कोषाप्तवाक्याद् व्यवहारतश्च।
वाक्यश्च शेषाद्विवृतेर्वदन्ति सानिध्यतः सिद्धपदस्य वृद्धाः।।
व्याप्ति की स्थापना कार्यकारण सम्बन्ध से नहीं हो सकती है। धूम और अग्नि में कार्यकारण सम्बन्ध माना जा सकता है। परन्तु चार्वाक इसका खण्डन करते हैं, क्योंकि कार्यकारण सम्बन्ध भो सामान्य होने से एक व्याप्ति है। अतः यहाँ एक व्याप्ति को सिद्ध करने के लिए दूसरी को स्वीकार किया गया है। जिसे धूम और अग्नि के कार्यकारण या अविनाभाव सम्बन्ध का ज्ञान नहीं उसे धूम से अग्नि का अनुमान नहीं होगा। धूमादि जानने के बाद अग्न्यादि जानने की जो प्रवृत्ति है वह या तो पूर्वकाल के प्रत्यक्ष पर आधारित है या बिल्कुल भम है। कभो कभो इससे फल की प्राप्ति हो जाती है, कभो इनके बिना भो कार्य सिद्धि होती है। अतः अन्वय व्यतिरेक की विधियों में न ठहर सकने के कारण इनमें कार्यकारण भाव नहीं है। काकतालीय न्याय से इनमें कार्यकारणभाव मान लेते हैं।
कुछ लोगों के अनुसार यद्यपि सभो धूमवान् पदार्थों को अग्नियुक्त देखना सम्भव नहीं है, फिर भो धूम सामान्य और अग्नि सामान्य का ज्ञान अवश्य हो सकता है। इस प्रकार धूम सामान्य और अग्नि सामान्य में नियत सम्बन्ध स्थापित हो सकता है। चार्वाक सामान्य की सत्ता नहीं मानते। उनके अनुसार यदि सामान्य की सत्ता मान भो ली जाए तो धूम सामान्य और अग्नि सामान्य का ज्ञान प्रत्यक्ष से असम्भव है क्योंकि सभो धूमवान् पदार्थों का प्रत्यक्षीकरण सम्भव नहीं है। कुछ व्यक्तियों को देखकर सामान्य की कल्पना उचित प्रतीत नहीं होती।
अनुमान की अप्रामाणिकता का दूसरा कारण यह है कि हमारे सारे अनुमान यथार्थ नहीं होते। व्यावहारिक जीवन में हमारे सारे अनुमान सटीक नहीं होते, ऐसी दशा में अनुमान को यथार्थ ज्ञान का साधन नहीं कहा जा सकता।

18.2.3 उपमान प्रमाण का खण्डन

उपमान संज्ञा और संज्ञी का सम्बन्ध मात्र बताता है, किसी द्सरे सम्बन्ध को बतलाने की शक्ति इसमें नहीं, अतः व्याप्ति का ज्ञान कराना उसके लिए साध्य नहीं क्योंकि व्याप्ति में उपाधि रहित सम्बन्ध का बोध होता है। यथा,
उपमानादिकं तु दूरापास्तम्। तेषां संज्ञासंज्ञिसम्बन्धादिबोधकत्वेन अनौपाधिकसम्बन्ध–बोधकत्वासम्भवात्।

18.2.4 शब्द प्रमाण का खण्डन

अधिकांश दार्शनिक अनुमान के अतिरिक्त शब्द को प्रमाणरूप में स्वीकार करते हैं– 'आप्तोपदेशः शब्दः'। आप्तपुरुष वे हैं जिनके कथन विश्वासयोग्य होते हैं। चार्वाक शब्द को ज्ञान का साधन नहीं मानते हैं। शब्द हमें अयथार्थ ज्ञान प्रदान कराता है। शब्द के विरुद्ध चार्वाक अनेक कारण प्रस्तुत करता है।
शब्द द्वारा ज्ञान तभो होता है जब कोई आप्तपुरुष उपलब्ध हो। यदि आप्त पुरुष मिल भो जाए तो यह ज्ञात करना मुश्किल है कि वह आप्त है। इसके लिए अनुमान की आवश्यकता होगी–
सभो आप्तपुरुष के वाक्य मान्य हैं,

यह आप्तपुरुष का वाक्य है। अतः यह मान्य है।
इस कारण से चार्वाक शब्द द्वारा प्राप्त ज्ञान को अनुमान पर आधारित मानते हैं। उनके अनुसार अनुमान अप्रामाणिक है, अतः उस पर आधारित शब्द ज्ञान भो अप्रामाणिक होगा।
शब्द ज्ञान का स्वतन्त्र साधन नहीं है। शब्द प्रत्यक्ष पर आधारित है। शब्द द्वारा ज्ञान हमें तभो होता है, जब हम किसी विश्वासयोग्य व्यक्ति के वचन को सुनते हैं, या प्रामाणिक ग्रन्थ का अध्ययन करते हैं। चार्वाक शब्द को प्रत्यक्ष पर आधारित मानने के बावजूद प्रामाणिक नहीं मानते क्योंकि शब्द से ईश्वर, स्वर्ग, नरक जैसी अप्रत्यक्ष वस्तुओं का ज्ञान होता है।

18.3 तत्त्वमीमांसा

सांख्य वैशेषिक आदि आस्तिक दर्शन पाँच महाभ्त स्वीकार करते हैं– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। सम्पूर्ण भोतिक जगत् प्रपंच इन्हीं पाँचों तत्त्वों का विस्तार माना जाता है। चार्वाक ने पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार ही तत्त्व माने हैं। वे आकाश को तत्त्व स्वीकार नहीं करते। आकाश की सिद्धि अनुमान प्रमाण से होती है। चार्वाक प्रत्यक्ष के अतिरिक्त प्रमाण नहीं मानता अतः आकाश की सत्ता को स्वीकार नहीं करता। सांख्य वैशेषिक आदि आस्तिक दर्शन पाँच महाभ्त स्वीकार करते हैं– पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। सम्पूर्ण भोतिक जगत् प्रपंच इन्हीं पाँचों तत्त्वों का विस्तार माना जाता है। चार्वाक ने पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार ही तत्त्व माने हैं। वे आकाश को तत्त्व स्वीकार नहीं करते। आकाश की सिद्धि अनुमान प्रमाण से होती है। चार्वाक प्रत्यक्ष के अतिरिक्त प्रमाण नहीं मानता अतः आकाश की सत्ता को स्वीकार नहीं करता।

18.3.1 पृथ्वी आदि चार भूत तत्त्व

चार्वाक ने पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ये चार ही तत्त्व माने हैं। वे आकाश को तत्त्व स्वीकार नहीं करते। आकाश की सिद्धि अनुमान प्रमाण से होती है। चार्वाक प्रत्यक्ष के अतिरिक्त प्रमाण नहीं मानता अतः आकाश की सत्ता को स्वीकार नहीं करता। इन चार तत्त्वों के शरीर के आकार में बदल जाने पर इन्हों चारों से चेतना स्वतः उत्पन्न हो जाती है। पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु में पृथक् पृथक् चैतन्य नहीं रहता, परन्तु ये चारों तत्त्व विकृत होकर देहरूप में परिणत होते हैं तो इनमें चैतन्य उत्पन्न हो जाता है। चार्वाक के अनुसार आत्मा का देह के अतिरिक्त कोई अस्तित्व नहीं है।
चार्वाक आकाश के अतिरिक्त चार भ्तों की सत्ता मानता है। इन पृथ्वी, जल, वायु और अग्नि के भोतिक तत्त्वों के संयोग से विश्व का निर्माण हुआ है, यथा–
पृथिव्यप्तेजोवायुरिति तत्त्वानि।
निर्माण का अर्थ है भ्तों का संयोग। इसके विपरीत प्रलय का अर्थ है भ्तों का वियोग। चार्वाक के अनुसार जगत् की सृष्टि का आधार भ्त हैं। प्राण और चेतना का विकास भ्त से ही हुआ है–
तत्समुदाये शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञा। तेभ्यश्चैतन्यम्।
जगत् की रचना के लिए भ्तों के अतिरिक्त किसी दूसरी सत्ता को मानना अनुचित है। ये भ्त ही विश्व की रचना के लिए पर्याप्त हैं। इन चारों भ्तों के भोतिक तत्त्वों का स्वभाव ऐसा है कि उसके सम्मिश्रण से न केवल निर्जीव वस्तु का विकास होता है, बल्कि सजीव वस्तु का भो निर्माण हो जाता है। यथा–

अत्र चत्वारि भ्तानि भ्मिवार्यनलानिलाः।
चतुर्भ्यः खलु भ्तेभ्यश्चैतन्यमुपजायते।।

इन निर्जीव भ्तों से चेतना के आविर्भाव के सन्दभ में चार्वाक उपमा प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार जिस प्रकार पान, कत्था, कसैली और चूने में लाल रंग का अभाव है फिर भो उनको मिलाकर चबाने से लाल रंग निर्मित होता है, उसी प्रकार पृथ्वी, जल, तेज और वायु के भ्त जब आपस में संयुक्त होते हैं तो चेतना का निर्माण हो जाता है।
चार्वाक विश्व को भ्तों के आकस्मिक संयोजन का फल मानता है। भ्तों में विश्व निर्माण की शक्ति विद्यमान है। जिस प्रकार आग का स्वभाव गर्म होना तथा जल का स्वभाव शीतलता प्रदान करना है उसी प्रकार भ्तों का स्वभाव विश्व का निर्माण करना है। इस प्रकार विश्व

की सृष्टि अपने आप हो जाती है। चार्वाक का यह सिद्धान्त स्वभाववाद कहलाता है, इसकी विश्व सम्बन्धी व्याख्या को स्वभाववाद कहा जाता है।

चार्वाक यन्त्रवाद का समर्थन करता है। वह विश्व प्रक्रिया को प्रयोजनहीन मानता है। उद्देश्य की पूर्ति विश्व रचना का अभोष्ट नहीं है। विश्व यन्त्र की तरह निरुद्देश्य है।

चार्वाक विश्व की व्याख्या के लिए वस्तुवाद को स्वीकार करता है। उसके अनुसार वस्तुओं का अस्तित्व ज्ञाता से स्वतन्त्र है। विश्व का द्रष्टा कोई हो या न हो विश्व का अस्तित्व यथार्थ है।

चार्वाक विश्व की व्याख्या जड़वाद के आधार पर करता है। भ्तों के आकस्मिक संयोजन से विश्व का निर्माण हुआ है।

18.3.2 आत्मा विषयक विचार

भारतीय दर्शन आत्मा की सत्ता में विश्वास करते हैं लेकिन चार्वाक आत्मा की सत्ता में विश्वास नहीं करता। चार्वाक चैतन्य को यथार्थ मानता है क्योंकि चैतन्य का ज्ञान प्रत्यक्ष से होता है परन्तु वह चैतन्य को आत्मा का गुण नहीं मानता। उसके अनुसार चैतन्य शरीर का गुण है। चैतन्य का सम्बन्ध शरीर से होने के कारण शरीर को ही आत्मा मानना चाहिए। चार भ्तों से चैतन्य की उत्पत्ति की व्याख्या वह ताम्बूल के दृष्टान्त से करता है। उसके अनुसार चैतन्य भो शरीर का ही विशेष गुण है। शरीर से अलग चेतना का अनुभव नहीं होता। चेतना शरीर से स्वतन्त्र नहीं है। वह आत्मा और शरीर में अभद मानता है। उसके अनुसार कृशता, स्थूलता आदि की अनुभ्ति से शरीर और आत्मा की एकता परिलक्षित होती है। यदि आत्मा शरीर से अलग होती तो मृत्यु के उपरान्त आत्मा का शरीर से पृथक्कृत रूप दिखाई देता लेकिन किसी ने मृत्यु के समय आत्मा को शरीर से अलग होते नहीं देखा। जब तक शरीर है तब तक आत्मा जीवित है।

जन्म के पूर्व और मृत्यु के बाद आत्मा का अस्तित्व मानना निराधार है। जन्म के पश्चात् चेतना का आविर्भाव होता है और मृत्यु के साथ ही उसका अन्त हो जाता है। चेतना का आधार शरीर है अतः वह शरीर से भिन्न नहीं हो सकती। यथा

देहः स्थौल्यादियोगाच्च स एवात्मा न चापरः।
मम देहोऽयमित्युक्तिः सम्भवेदौपचारिकी।।

कुछ विद्वान् चार्वाक के दो सम्प्रदाय मानते हैं 1. धूर्त चार्वाक 2. सुशिक्षित चार्वाक।

धूर्त चार्वाक आत्मा और शरीर को अभिन्न मानता है। शरीर चार भ्तों के संयोग का प्रतिफल है और चेतना आत्मा का आकस्मिक गुण है। उनके अनुसार आत्मा शरीर का ही दूसरा नाम है।

सुशिक्षित चार्वाक आत्मा को शरीर से भिन्न मानते हैं। आत्मा की नाना प्रकार की अनुभ्तियां होती हैं। उनके अनुसार आत्मा ज्ञाता है। वे भो आत्मा को शाश्वत नहों मानते। शरीर का अन्त ही आत्मा का भो अन्त है। यथा— देहात्मवादे च स्थूलोऽहं कृशोऽहं कृष्णोऽहम् इत्यादि सामानाधिकरणोपपत्तिः। मम शरीरम् इति व्यवहारो राहोः इत्यादिवदौपचारिकः।

शरीर से अलग आत्मा की सत्ता नहीं मानने के कारण चार्वाक आत्मा विषयक प्रत्येक प्रश्न का निराकरण करता है। वह आत्मा की अमरता में विश्वास नहीं करता। पुनर्जन्म व परलोक भो मिथ्या है। यदि आत्मा का पुनर्जन्म होता तो हमें एक जन्म की अनुभ्ति दूसरे जन्म में भो होती। जैसे बाल्काल की अनुभ्ति वृद्धावस्था में रहती है, परन्तु आत्मा को पुनर्जन्म की अनुभ्ति नहीं होती, अतः पनर्जन्म मिथ्या है। शरीर मृत्यु के बाद भ्तों में मिल जाता है और आत्मा भो उसी में लीन हो जाती है। आत्मा की अमरता नहीं मानने के कारण चार्वाक स्वर्ग नरक को नहीं मानते। जब आत्मा का शरीर से भिन्न अस्तित्व नहीं है तो स्वर्ग नरक की प्राप्ति किसे होगी? अतः स्वर्ग नरक की अवधारणा खण्डित हो जाती है।

18.3.3 ईश्वर विषयक विचार

चार्वाक अनुमान को भो प्रमाण नहीं मानते, अतः वह ईश्वर की सत्ता स्वीकार नहीं करता। स्वभावतः ही जगत् की सृष्टि एवं प्रलय होने से चार्वाक के लिए ईश्वर को मानने की जरुरत नहीं रहती। ईश्वर संसार का स्रष्टा है और विश्व ईश्वर को सृष्टि है। चार्वाक इसके

खण्डन में कहता है कि चार भ्तों के सम्मिश्रण से सृष्टि होती है। वे ही सृष्टि के निमित्त व उपादान कारण हैं, अतः ईश्वर को मानना अनुचित है। उसके अनुसार लोकसिद्धो राजा परमेश्वरः है।

संसार की व्यवस्था का कारण भो ईश्वर नहीं है। चार्वाक के अनुसार विश्व की व्यवस्था का कारण स्वयं विश्व है। व्यवस्था विश्व का स्वभाव है। अतः ईश्वर को मानना व्यर्थ है।

ईश्वर की सत्ता में अविश्वास के कारण चार्वाक अनीश्वरवादी दर्शन कहलाता है। अतः सर्वज्ञता, दया, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापकत्व आदि ईश्वर के कल्पित गुण हैं। यदि ईश्वर दयालु होता तो भक्तों के दुःखों का अन्त करता। चार्वाक के अनुसार ईश्वर को प्रसन्न रखने का विचार बीमारी है। धर्म नशे की तरह हानिकारक है। पूजा अर्चना मन बहलाने के साधन हैं।

चार्वाक का जड़वादी दर्शन सभो प्रकार के आध्यात्मिक तथ्यों की अवहेलना करता है। वह अप्रत्यक्ष वस्तुओं का खण्डन करता है। आत्मा एक अवास्तविक वस्तु है ईश्वर का अस्तित्व नहीं है। स्वर्ग नरक काल्पनिक धारणा है। इस प्रकार आत्मा, ईश्वर, स्वर्ग, नरक, धर्म, पाप, पुण्य सभो का निषेध होता है और सिर्फप्रत्यक्ष जगत् ही बच जाता है। प्रत्यक्ष जगत् को एकमात्र सत्य मानने के फलस्वरूप चार्वाक जीवन के सुखों को स्वीकार करता है, अतः वह स्वतः सुखवादी है।

18.3.4 मोक्ष विषयक विचार

चार्वाक की मोक्ष की कल्पना भो विलक्षण है। प्रत्येक क्लेश का निकेतन यही भोगायतन शरीर है। जब तक शरीर है तब तक जीव नाना प्रकार के कष्ट सहता हुआ जीवन व्यतीत करता हैं अतः इस देह के पतन के साथ हो दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति सिद्ध होती है। इस प्रकार मरणमेव अपवर्गः मरण को अपवर्ग मानना युक्तियुक्त है। सभो दर्शनों में पुरुषार्थ चतुष्ट्य को स्वीकार किया गया है– धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष। सभो ने मोक्ष को जीवन का चरम लक्ष्य माना है। चार्वाक चारों पुरुषार्थों में से अर्थ एवं काम को स्वीकार करता है। उनके अनुसार धर्म मानव के कर्मों का लक्ष्य नहीं है। मोक्ष को भो चार्वाक स्वीकार नहीं करता। मोक्ष का अर्थ है दुःख विनाश। आत्मा ही मोक्ष को अपनाती है। चार्वाक के अनुसार आत्मा की सत्ता ही नहीं है तो मोक्ष किसे प्राप्त होगा? अतः मोक्ष का विचार स्वतः खण्डित हो जाता है।

चार्वाक का कहना है– देहच्छेदो मोक्षः। कोई भो बुद्धिमान व्यक्ति मृत्यु की कामना नहीं कर सकता है। अतः मोक्ष को पुरुषार्थ कहना निरर्थक है। चार्वाक के अनुसार–

देहस्य नाशो मुक्तिस्तु न ज्ञानान्मुक्तिरिष्यते।

चार्वाक मोक्ष को नहीं काम को जीव का चरम पुरुषार्थ मानता है– काम एवैकः पुरुषार्थः।

चार्वाक धर्म को नहीं मानता है। वेदानुकूल कम ही धर्म कहा जाता है लेकिन चार्वाक वेद को अस्वीकार करता है। ब्राह्मणों ने वेद की रचना की और धर्म, अधर्म, पाप कमों का अनुष्ठान निरर्थक है।

18.4 चार्वाक की विचार धारा

चार्वाक के अनुसार मांसभक्षण राक्षसवृत्ति है। मरणोत्तर कार्य जीविका के साधन मात्र हैं और कुछ नहीं। चार्वाक श्राद्धकम की मजाक बनाता है। प्रेतात्मा को तृप्त करने के लिए श्राद्ध में भोजन अर्पण किया जाता है। उसके अनुसार ऐसे व्यक्तियों के लिए भोजन अर्पण करना मूर्खता है। अगर श्राद्ध में अर्पित भोजन स्वर्ग में प्रेतात्मा की भ्ख शान्त कर सकता है। तब नीचे के कमरों में अर्पित भोजन छत पर रहने वाले व्यक्तियों को क्यों नहीं तृप्त कर सकता। चार्वाक कम सिद्धान्त का भो खण्डन करता है। कम सिद्धान्त के अनुसार शुभ कर्मों के करने से सुख तथा अशुभ कर्मों के करने से दुःख की प्राप्ति होती है। कम सिद्धान्त का ज्ञान प्रत्यक्ष से नहीं होता है, अतः चार्वाक इस सिद्धान्त का निषेध करता है। चार्वाक के अनुसार यदि स्वर्ग नरक का अस्तित्व माना भो जाए तो भो वह इसी संसार में है। इसीलिए चार्वाक ने कहा है सुखमेव स्वर्गम्, दुःखमेव नरकम्।

भारतीय दर्शन वेद को प्रमाण मानते हैं। चार्वाक वेद विरोधी दर्शन है, अतः वह वेद की निन्दा करता है। वेद में ऐसे अनेक वाक्य हैं जो निरर्थक, द्वयर्थक, व्याघातक, अस्पष्ट तथा असंगत है।
वद की रचना ब्राह्मणों ने अपने जीवन निर्वाह के उद्देश्य से की है। उन्होंने जीविकोपार्जन के इस साधन की अत्यधिक प्रशंसा की है। चार्वाक ने उन्हें भाण्ड, निशाचर और धूर्त कहा है। अतः उनके द्वारा निर्मित वेद प्रामाणिक नहीं हो सकते।
वैदिक कमकाण्ड काल्पनिक हैं। यज्ञ विधियां अनर्गल प्रलाप हैं। वेद में परस्पर विरोधी बातों का विवेचन है। चार्वाक वेद को मानवीय रचना से भो तुच्छ मानते हैं। वे वेद को ईश्वरीय नहीं मानते।
चार्वाक सुखवादी दर्शन है। वह इन्द्रिय सुख पर अत्यधिक जोर देता है। हमारा अस्तित्व इसी शरीर और इसी जीवन तक सीमित है। अतः इस जीवन मे अधिक से अधिक सुख प्राप्त करना चाहिए। अतः चार्वाक का कथन है–

यावज्जीवेत् सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभ्तस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः।

जिस प्रकार भो हो सुख के साधन देह की रक्षा का प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार चार्वाक का दृष्टिकोण पूर्णतः देह सुखवादी है।देह की आयु वृद्धि के लिए घृत पीने का उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में भो आया है– घृतं वै आयुः। शरीर को ही आत्मा मानने के कारण से देह सुख की प्रधानता सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है।
सर्वदर्शनसंग्रह से चयनित अंश

न स्वर्गो नापवर्गो वा नैवात्मा पारलौकिकः।
नैव वर्णाश्रमादीनां क्रियाश्च फलदायिकाः।। 12।।
अग्निहोत्रं त्रयो वेदास्त्रिदण्डं भस्मगुण्ठनम्।
बुद्धिपौरुषहीनानां जीविका धातृनिर्मिता।। 13।।
पशुश्चेन्निहतः स्वर्गं ज्योतिष्टोमे गमिष्यति।
स्वपिता यजमानेन तत्र कस्मान्न हिंस्यते?।। 14।।
मृतानामपि जन्तूनां श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणम्।
निर्वाणस्य प्रदीपस्य स्नेहः संवर्धयेच्छिखाम्।। 15।।
गच्छतामिह जन्तूनां व्यर्थं पाथेयकल्पनम्।
गेहस्थकृतश्राद्धेन पथि तृप्तिरवारिता।। 16।।
स्वर्गस्थिता यदा तृप्तिं गच्छेयुस्तत्र दानतः।
प्रासादस्योपरिस्थानामत्र कस्मान्न दीयते?।। 17।।
यावज्जीवेत्सुखं जीवेदृणं कृत्वा घृतं पिबेत्।
भस्मीभ्तस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः?।। 18।।
यदि गच्छेत्परं लोकं देहादेष विनिर्गतः।
कस्माद् भ्यो न चायाति बन्धुस्नेहसमाकुलः?।। 19।।
ततश्च जीवनोपायो ब्राह्मणैर्विहितस्त्विह।
मृतानां प्रेतकार्याणि न त्वन्यद्विद्यते क्वचित्।। 20।।
त्रयो वेदस्य कत्तारो भण्डधूर्तनिशाचराः।
जभरीतुर्फरीत्यादि पण्डितानां वचः स्मृतम्।। 21।।
अश्वस्यात्र हि शिश्नं तु पत्नीग्राह्यं प्रकीर्तितम्।
भण्डैस्तद्वत्परं चैव ग्राह्यजातं प्रकीर्तितम्।
मांसानां खादनं तद्वन्निशाचरसमीरितम्।। 22।।

श्री माधवाचार्य कृत सर्वदर्शनसंग्रह में प्रस्तत चार्वाकमतसार के उपर्युक्त श्लोकों का अर्थ निम्नानुसार समझा जा सकता है–
बृहस्पति ने भो यह सब कहा है कि न तो स्वर्ग है, न अपवर्ग (मोक्ष) और न परलोक में रहने वाली आत्मा। वर्ण आश्रम आदि की क्रियाएं भो फल देने वाली नहीं हैं।। 12।।

अग्निहोत्र, तीनों वेद, तीन दण्ड धारण करना, भस्म लगाना–ये बुद्धि और पुरुषार्थ से रहित लोगों की जीविका के साधन हैं जिन्हें ब्रह्मा ने बनाया।। 13।। यदि ज्योतिष्टोम– यज्ञ में मारा गया पशु स्वर्ग जाएगा तो उसके स्थान पर यज्ञकर्ता अपने पिता को ही क्यों नहीं मार डालता?।। 14।। मरे हुए प्राणियों को यदि श्राद्ध से तृप्ति मिले तो बुझे हुए दीपक की शिखा को तो तेल अवश्य ही बढा देगा? अर्थात् नहीं बढा सकता।। 15।। बाहर जाने वाले लोगों के लिये रास्ते का भोजन देना व्यर्थ है, घर में किये गये श्राद्ध से ही तृप्ति मिल जानी चाहिये।। 16।। स्वर्ग में स्थित पितर यदि यहाँ दान करने से तृप्त हो जाते ह तो महल के ऊपर बैठे लोगों को तो कम से कम नीचे से ही देकर तृप्त कर देना चाहिये।। 17।। जब तक जीना है, सुख से जीना चाहिये। ऋण लेकर भो (शरीर की वृद्धि हेतु) घी पीना चाहिये क्योंकि (मरकर) भस्म बने हुए शरीर का संसार में पुनरागमन नहीं होता।। 18।। यदि (आत्मा) शरीर से निकलकर परलोक में चला जाता है तो बान्धवों के स्नेह से पसीज कर वापिस क्यों नहीं आता? ।। 19।। इसलिये ब्राह्मणों द्वारा यह जीविका का उपाय बनाया हुआ है, मृत व्यक्तियों से सम्बन्धित समस्त कार्यकलाप इसके अतिरिक्त कुछ नहीं हैं।। 20।। वेद के कर्ता तीन हैं भाण्ड, धूर्त आर निशाचर। जभरी तुर्फरी आदि पण्डितों की वाणी समझी जाती है।। 21।। अश्वमेध के ग्राह्यविधान भो भाण्डप्रकीर्तित हैं।। 22।। तथा मांसभक्षण भो निशाचरों का कथन है। इत्यादि।

18.5 पारिभाषिक शब्दावली

1. नरकः– दुःखमेव नरकः।
2. स्वर्गः–सुखमेव स्वर्गः।
3. मुक्ति–देहस्य नाशो मुक्तिः।
4. उपाधि– साध्यस्य व्यापको यस्तु हेतोरव्यापकस्तथा।
   स उपाधिर्भवेत्तस्य निष्कर्षोऽयं प्रदर्श्यते।। साध्य के रूप में स्वीकृत वस्तु का जो व्यापक हो तथा साधन के रूप में स्वीकृत वस्तु का व्यापक न हो वही उपाधि है। अथवा साध्यव्यापकत्वे सति साधनाव्यापकत्वमुपाधिः।
5. परमेश्वरः– लोकसिद्धो भवेद्राजा परमेश्वरः।

18.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. चार्वाक दर्शन के अनुसार प्रमाण कितने है? प्रत्यक्ष प्रमाण विषयक चार्वाक मत को स्पष्ट करें।
2. अनुमान के सम्बन्ध में चार्वाक मत का प्रतिपादन कीजिये।
3. उपमान के सम्बन्ध में चार्वाक के विचार स्पष्ट कीजिये।
4. शब्द प्रमाण के सम्बन्ध में चार्वाक का क्या मत हैं? स्पष्ट करें।
5. चार्वाक के भूत विषयक विचारों को स्पष्ट कीजिए।
6. चार्वाक के आत्मा विषयक विचारों का प्रतिपादन कीजिये।
7. चार्वाक के ईश्वर सम्बन्धी चिन्तन की विशेषता क्या है?
8. चार्वाक की मोक्ष विषयक विचारधारा को स्पष्ट कीजिये।
9. चार्वाक की विचारधारा को प्रतिपादित कीजिये।

बोध प्रश्नों उत्तर

1. इकाई संख्या 18.2, 18.2.1 देखें।
2. इकाई 18.2.2 देखें।
3. इकाई 18.2.3 देखें।
4. इकाई 18.2.4 देखें।
5. इकाई 18.3.1 देखें।
6. इकाई 18.3.2 देखें।
7. इकाई 18.3.3 देखें।
8. इकाई 18.3.4 देखें।

9. इकाई 18.4 देखें।

18.7 सारांश

चार्वाक नास्तिक, अनीश्वरवादी, प्रत्यक्षवादी तथा सुखवादी दर्शन है। चार्वाक वेद का खण्डन करता है। वेद विरोधी दर्शन होने के कारण ही चार्वाक को नास्तिक कहा जाता है। वह ईश्वर का विरोध करता है। ईश्वर की सत्ता में अविश्वास के कारण वह अनीश्वरवादी है, प्रत्यक्ष के अतिरिक्त प्रमाण स्वीकार नहीं करने से वह प्रत्यक्षवादी है और सुख अथवा काम को जीवन का अन्तिम लक्ष्य स्वीकार करने के कारण वह सुखवादी दर्शन कहलाता है।

चार्वाक जड़वादी हैं। उनके अनुसार जड़ ही एकमात्र तत्त्व है और उसी से मन अथवा चेतना उत्पन्न होते हैं। प्रबोध चन्द्रोदय नामक रूपक में कृष्णपति मिश्र ने जड़वाद दर्शन का परिचय देते हुए लिखा है– लोकायत ही एकमात्र शास्त्र है, प्रत्यक्ष ही एकमात्र प्रमाण है, पृथ्वी, जल, अग्नि और वायु ही एकमात्र तत्त्व हैं, सुखोपभोग ही मानव सत्ता का एकमात्र श्रेय है, मानव जड़ की एक उत्पत्ति मात्र है। कोई परलोक नहीं है, मृत्यु का अर्थ निर्वाण है।

18.8 संदर्भ ग्रंथ सूची

1. भारतीय दर्शन का इतिहास– एस.एन. दासगुप्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2003.
2. भारतीय दर्शन की रूपरेखा, प्रो0 हरेन्द्र सिन्हा, मोती लाल बनारसीदास, दिल्ली, 1991.
3. भारतीय दर्शन, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1991.
4. सर्वदर्शनसंग्रह, प्रो0 उमाशंकर शर्मा ऋषि, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1984.
5. भारतीय दर्शन– डॉ.राधाकृष्णन, राजपाल एण्ड सन्ज, काश्मीरगेट, दिल्ली, 2004.